1

धवला पुस्तक 11

DATE

वेदनाक्षेत्रविधानानुयोगद्वार

पृ.4-5

आठ प्रकार के कर्मद्रव्य की वेदना संज्ञा है। वेदना का क्षेत्र वेदनाक्षेत्र है। संसारी जीव के प्रदेशों पर ही कर्म का अस्तित्व पाया जाता है इसलिए जो एक जीव का अवगाहन क्षेत्र है वहीं कर्म का क्षेत्र होता है।

1) ज्ञानावरणीय की वेदना क्षेत्र उत्कृष्ट → आठ राजुओं में मारणान्तिक समुद्घात करनेवाले महामत्स्य का क्षेत्र
2) " " अनुत्कृष्ट → महामत्स्य को छोड़कर अन्यत्र
3) " " जघन्य → सूक्ष्म निगोद जीव की जघन्य अवगाहना का क्षेत्र
4) " " अजघन्य → " " " को छोड़कर अन्यत्र
5) " " " सादि → विशिष्ट ज्ञानावरण विशिष्ट जीव के साथ नया संबंध को प्राप्त होता है तो वह
6) " " " अनादि → सामान्य ज्ञानावरण एक जीव के साथ अनादिकाल से है।
7) " " " ध्रुव → द्रव्यार्थिक नय का आश्रय करनेपर ज्ञानावरणीय कर्म का क्षेत्र जो सब लोक है वह ध्रुव देखा जाता है।
8) " " " अध्रुव → पर्यायार्थिक नय की अपेक्षा उक्त क्षेत्र के अध्रुवपना भी देखा जाता है।
9) " " " ओज → किसी क्षेत्रविशेष में विषम संख्याविशेष पाये जाते हैं।
10) " " युग्म → " " सम " " " हैं।
11) " " " ओम → किसी क्षेत्रविशेष में पहले से हानि देखी जाती है। जैसे किसी जीव ने बड़ी अवगाहना को छोड़कर छोटी अवगाहना धारण की तो ज्ञानावरण के क्षेत्र में भी हानि हो गयी।
12) " " " विशिष्ट → छोटी अवगाहना को छोड़कर बड़ी अवगाहना धारण करनेपर ज्ञानावरण के क्षेत्र में वृद्धि देखी जाती है।
13) " " " नोम-नोविशिष्ट → कहींपर वृद्धि और हानि के बिना क्षेत्र का अवस्थान देखा जाता है।

ओज दो प्रकार का है – 1) कलिओज → जिसमें चार का भाग देनेपर एक शेष रहता है वह 13 राशि
2) तेजोज → जिसमें चार का भाग देनेपर तीन शेष रहता है वह राशि 15
युग्म दो प्रकार का है – 1) कृतयुग्म → जिसमें चार का भाग देनेपर शून्य शेष रहता है वह 16 राशि
2) बादरयुग्म → जिसमें चार का भाग देने पर दो शेष रहता है वह राशि 14

सामान्य विवक्षा से ज्ञानावरण वेदना अनादि काल से चली आ रही है, किन्तु किसी विवक्षित भेद की विवक्षा से वह सादि और अध्रुव पायी जाती है इसलिए अनादि और ध्रुव ज्ञानावरण वेदना का क्षेत्र सादि और अध्रुव होता है, परन्तु सादि और अध्रुव ज्ञानावरण वेदना का क्षेत्र अनादि और ध्रुव नहीं होता है।

DATE

पृ.५-१०

	उत्कृष्ट	अनुत्कृष्ट	जघन्य	अजघन्य	सादि	अनादि	ध्रुव	अध्रुव	ओज	युग्म	ओम	विशिष्ट	नोम-नोविशिष्ट
उत्कृष्ट	✓			✓	✓	✓	✓	✓		✓			✓
अनुत्कृष्ट		✓	✓	✓	✓	✓	✓	✓	✓	✓	✓	✓	✓
जघन्य		✓	✓		✓	✓	✓	✓		✓		[illegible]	✓
अजघन्य	✓	✓		✓	✓	✓	✓	✓	✓	✓	✓	✓	✓
सादि	✓	✓	✓	✓	✓	✓	✓	✓	✓	✓	✓	✓	✓
अनादि						✓	✓		✓	✓	✓	✓	✓
ध्रुव						✓	✓		✓	✓	✓	✓	✓
अध्रुव	✓	✓	✓	✓	✓	✓	✓	✓	✓	✓	✓	✓	✓
ओज		✓		✓	✓	✓	✓	✓	✓		✓	✓	✓
युग्म	✓	✓	✓	✓	✓	✓	✓	✓		✓	✓	✓	✓
ओम		✓		✓	✓	✓	✓	✓	✓	✓	✓		
विशिष्ट		✓		✓	✓	✓	✓	✓	✓	✓		✓	
नोम-नोविशिष्ट	✓	✓	✓	✓	✓	✓	✓	✓	✓	✓			✓
	५/६	९/१०	५/६	९/१०	१०/११	१२/१३	१२/१३	१०/११	९/१०	११/१२	८/९	८/९	१०/११

पृ.११-१२

- जघन्य
  - नाम
  - स्थापना
  - द्रव्य
    - आगम
    - नोआगम
      - ज्ञायकशरीर
      - भावी
      - तद्व्यतिरिक्त
        - ओघ
          - द्रव्य → एक परमाणु
          - क्षेत्र
            - कर्मक्षेत्र → सूक्ष्म निगोद की जघन्य अवगाहना
            - नोकर्म → एक आकाश प्रदेश
          - काल → १ समय
          - भाव → १ स्निग्धादि गुण
        - आदेश
          - द्रव्य → तीन प्रदेश स्कन्ध की अपेक्षा दो प्रदेशी स्कन्ध
          - क्षेत्र → 3 प्रदेश अवगाहना की अपेक्षा 2 प्रदेश की अवगाहना क्षेत्र
          - काल
          - भाव
  - भाव
    - आगम
    - नोआगम → सू.नि.लब्ध्य. जघन्य ज्ञान

यहां ओघजघन्य कर्मक्षेत्र प्रकृत है क्योंकि ज्ञानावरणीय के क्षेत्रों में सर्वजघन्य क्षेत्र का ग्रहण

classmate

DATE

पृ.93

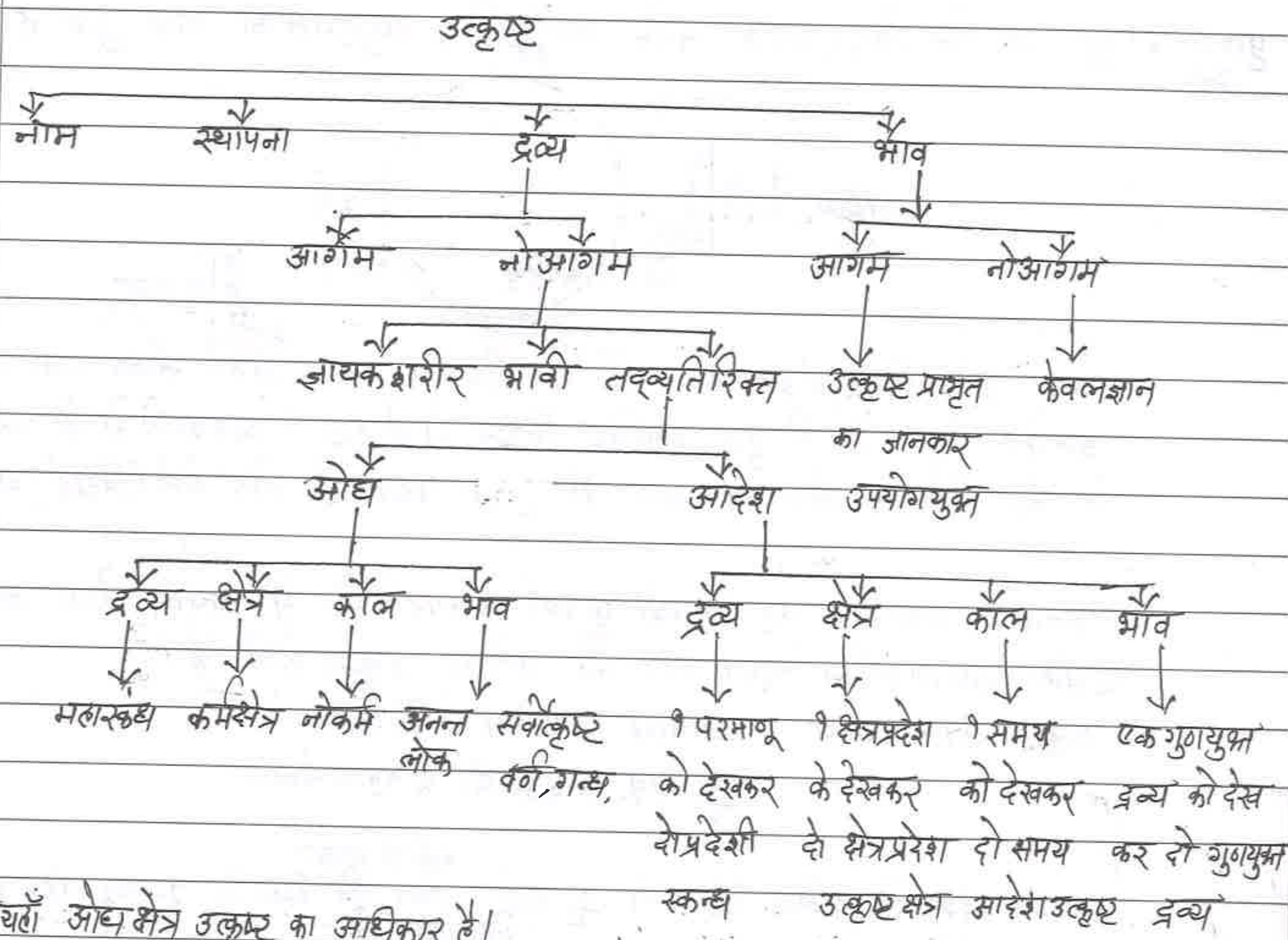

यहाँ ओघ क्षेत्र उत्कृष्ट का अधिकार है।

पृ.94-95

स्वामित्व → ज्ञानावरणीय का उत्कृष्ट वेदना क्षेत्र का स्वामी कौन है?

1) जो मत्स्य एक हजार योजन की अवगाहनावाला स्वयंभूरमण समुद्र के बाह्य तट पर स्थित है → यहाँ बाह्य तट का अभिप्राय समुद्र के बाहर का भूभाग प्रदेश ऐसा ग्रहण करना चाहिए।

वीरसेन आचार्य के अभिप्राय से स्वयंभूरमण समुद्र से तीन वातवलय सम्बद्ध नहीं है। स्वयंभूरमण समुद्र के बाहर असंख्यात द्वीप समुद्रों से व्याप्त क्षेत्र से संख्यातगुणा क्षेत्र जानेपर 1 राजू का क्षेत्र समाप्त होता है और उसके बाहर तीन वातवलय है। इसलिए तीनों वातवलय स्वयम्भूरमण समुद्र की बाह्य वेदिका से सम्बद्ध नहीं है।

2) महामत्स्य वेदना समुद्घात से समुद्घात को प्राप्त हुआ।

3) जो तनुवातवलय से स्पृष्ट है।

महामत्स्य का तृतीय वातवलय से स्पर्श नहीं होता किन्तु यहां सामीप्य अर्थ ग्रहण करना। वातवलय के पास के प्रदेश से संसर्गित होता है। पूर्वभव के वैरी किसी देव के द्वारा स्वयंभूरमण समुद्र की बाह्य वेदिका के बाहिर भाग में लोकनाली के समीप पटका गया। वहाँ तीव्र वेदना के वश से वेदना समुद्घात को प्राप्त होकर लोकनाली के बाह्य भागपर्यन्त यह संसक्त होता है, यह अभिप्राय है।

DATE

पृ.२०-२२ ४) पुन: जो तीन विग्रहकांडक करके मारणान्तिक समुद्घात को प्राप्त हुआ है।

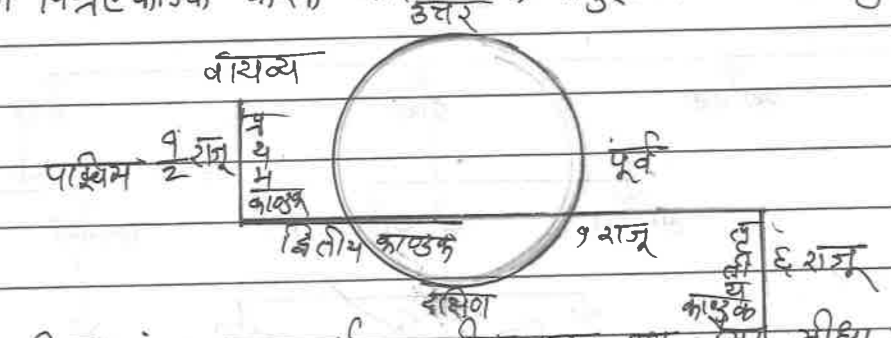

यहाँ तीन विग्रहकांडक का अर्थ - तीन बार बाण जैसा सीधा गया किन्तु इसमें मोड़ा दो ही हुए, इसलिए विग्रह दो ही हुए। त्रसनाली में से त्रसनाली में पैदा होने के लिए दो बार ही मुड़ना पड़ता है, तीन मोड़े (विग्रह) नहीं होते।

५) अनन्तर समय में वह सातवी पृथिवी के नारकियों में उत्पन्न होगा अत: उसके ज्ञानावरणीय वेदना क्षेत्र की अपेक्षा उत्कृष्ट होती है।

उत्कृष्ट क्षेत्र का प्रमाण = आयाम × उत्सेध × विष्कम्भ

$\frac{15}{2}$ राजू × ७५० यो. × १५०० योजन

वायव्य दिशा से दक्षिण दिशा में $\frac{1}{2}$ राजू, फिर वहाँ से मुड़कर पूर्व दिशा में १ राजू, फिर वहाँ से मुड़कर नीचे छह राजु मात्र गया इसप्रकार महामत्स्य की लंबाई ७$\frac{1}{2}$ राजू होती है, वेदना समुद्घात में तिगुणा प्रमाण होने से उत्सेध २५०×३ = ७५० योजन होता है और विष्कम्भ ५००×३ = १५०० योजन होता है।

मारणान्तिक समुद्घात में जीव के प्रदेश तीन दण्डरूप से फैलते हैं वे पुन: संकुचित न होकर मरण के बाद ही प्रथम समय में प्रथम दण्डरूप से फैले हुए प्रदेश संकुचित हो जाते हैं, दूसरे समय में द्वितीय दण्ड का उपसंहार होता है और तृतीय समय में तृतीय दण्ड का उपसंहार होता है इसलिए मारणान्तिक समुद्घात के अंतिम समय में उत्कृष्ट क्षेत्र प्राप्त होता है क्यों कि वहां तीन दण्डरूप से जीव के प्रदेश विस्तृत हैं।

पृ.२३-२५ अनुत्कृष्ट वेदना → महामत्स्य के उपर्युक्त उत्कृष्ट क्षेत्र से भिन्न अनुत्कृष्ट वेदना है।
" " असंख्यात विकल्परूप है।

अनुत्कृष्ट क्षेत्र के विकल्प

1) पूर्वोक्त महामत्स्य से मुख में एक प्रदेश कम अवगाहना युक्त महामत्स्य की अपेक्षा प्रथम भेद
2 " " " दो " " " " द्वितीय भेद
3) " " " तीन " " " " तृतीय भेद
४) " " " चार " " " " चौथा भेद
⋮
" " " संख्यात प्रतरांगुल प्रदेश कम " " असंख्यातवाँ भेद

PAGE

classmate

DATE

यह क्षेत्र सामान्योक्त महामत्स्य के एक प्रदेश कम ७½ राजु तक मारणान्तिक समुद्घात करनेवाले के क्षेत्र के सदृश है। अर्थात उत्कृष्ट अवगाहनायुक्त महामत्स्य ग्रहण करके मारणान्तिक समुद्घात के क्षेत्र में एक प्रदेश कम करना।

पुन: उत्कृष्ट अवगाहना में १,२,३ आदि संख्यात प्रतरांगुल प्रमाण प्रदेश कम करके एक प्रदेश कम ७½ राजु तक मारणान्तिक समुद्घात करके क्षेत्रों की प्ररूपणा करना।

यह अन्तिम क्षेत्र २ प्रदेश कम ७½ राजु तक मारणान्तिक समुद्घात करनेवाले महामत्स्य के समान है।

पुन: उत्कृष्ट अवगाहना में १,२,३ आदि प्रदेश कम करके २ प्रदेश कम ७½ राजु तक मारणान्तिक समुद्घात की अपेक्षा संख्यात प्रतरांगुल प्रमाण क्षेत्रों की प्ररूपणा करना।

यहाँ सबसे अन्तिम विकल्प तीन प्रदेश कम ७½ राजु तक मारणान्तिक समुद्घात को छोड़नेवाले महामत्स्य के क्षेत्र के सदृश होता है।

इस प्रकार मारणान्तिक क्षेत्र के आयाम में एक-एक प्रदेश कम करके उसे अवस्थित रखकर फिर अवगाहना में एक-एक प्रदेश कम करके विकल्प

पृ.२६ उत्पन्न करना चाहिए। इस प्रकार वेदना समुद्घात से समुद्घात को प्राप्त महामत्स्य के क्षेत्र तक ले जाना चाहिए।

यह अन्तिम क्षेत्र वेदना समुद्घात के बिना मूल आयाम के साथ नौ हजार योजन मारणान्तिक समुद्घात को करता है उसके क्षेत्र के समान है। महामत्स्य की लम्बाई १००० योजन है वेदना समुद्घात में अवगाहना तिगुणी होती है व उसका घनफल निकालने पर वह मूल शरीर से नौ गुणा होता है इसलिए वेदना समुद्घात का क्षेत्र और वेदना समुद्घात के बिना ९००० योजन मारणान्तिक समुद्घात का क्षेत्र समान कहा है।

इसके आगे ९००० योजन मारणान्तिक समुद्घात का क्षेत्र अवस्थित रखकर मुखमें एक-एक प्रदेश कम करने पर संख्यात प्रतरांगुल प्रमाण अनुत्कृष्ट क्षेत्र के विकल्प उत्पन्न होते हैं पुन: एक प्रदेश कम ९००० योजन मारणान्तिक समुद्घात को करनेवाले महामत्स्य का क्षेत्र उपर्युक्त सदृश है।

इस प्रकार एक प्रदेश कम, दो प्रदेश कम इत्यादि क्रम से महामत्स्य के

उत्कृष्ट अवगाहना − १ प्रदेश → अनन्तर अधस्तन अनुत्कृष्ट क्षेत्र का स्वामी

इसप्रकार एक-एक क्षेत्र प्रदेश कम करके बादर वनस्पति प्रत्येक शरीर उत्कृष्ट अवगाहना प्राप्त होने तक ले जाना चाहिए

पृ.२७ बादर वनस्पति प्रत्येक शरीर उत्कृष्ट अवगाहना − १ प्रदेश, २ प्रदेश .... द्वीन्द्रिय निर्वृत्ति पर्याप्तक की उत्कृष्ट अवगाहना प्राप्त होने तक

द्वी. प. उत्कृष्ट अवगाहना – १ प्रदेश, २ प्रदेश ...... चतुरिन्द्रिय पर्याप्तक उत्कृष्ट अवगाहना तक
चतु. प. उत्कृष्ट अवगाहना – १ प्र., २ प्रदेश ..... त्रीन्द्रिय पर्याप्तक उत्कृष्ट अवगाहना
त्री. प. उत्कृष्ट अवगाहना – १ प्र., २ प्रदेश ..... त्री. प. की अजघन्य अनुत्कृष्ट एक घनांगुल अवगाहना प्राप्त होने तक
१ घनांगुल – १ प्रदेश, २ प्रदेश .... सूक्ष्म निगोद लब्ध्यपर्याप्तक की जघन्य अवगाहना तक

अनुत्कृष्ट क्षेत्र विकल्प = असंख्यात श्रेणिमात्र

	जीवों का प्रमाण
त्रसकायिकों के योग्य क्षेत्रविकल्पों में →	असंख्यात
स्थावरकायिकों के योग्य " " →	असंख्यात लोक प्रमाण
वनस्पतिकायिक के " " " →	अनन्त जीव

पृ. २८ भागाभाग प्ररूपणा

उत्कृष्ट स्थान के जीव → अनन्तवें भाग प्रमाण
जघन्य स्थान में जीव → असंख्यातवें भाग प्रमाण
अजघन्य-अनुत्कृष्ट स्थानों में जीव → असंख्यात बहुभाग प्रमाण

अल्पबहुत्व

उत्कृष्ट स्थान में जीव → सबसे कम हैं।
जघन्य स्थान में " → अनन्तगुणे
अजघन्य-अनुत्कृष्ट स्थान में → असंख्यात गुणे गुणकार = $\frac{\text{अंगुल}}{\text{असंख्यात}}$
अजघन्य स्थान में → विशेष अधिक (उपर्युक्त स्थान + उत्कृष्ट स्थान के जीव)
अनुत्कृष्ट स्थान में → विशेष अधिक (उपर्युक्त स्थान – उत्कृष्ट स्थान के जीव + जघन्य स्थान के जीव)
सब स्थानों में जीव → विशेष अधिक (उपर्युक्त स्थान + उत्कृष्ट स्थान के जीव)

इसी प्रकार दर्शनावरणीय, मोहनीय, और अन्तराय कर्म के भी उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट वेदना क्षेत्रों की प्ररूपणा करना चाहिए।

पृ. २९ वेदनीय कर्म की उत्कृष्ट वेदना क्षेत्र का स्वामी → केवलिसमुद्घात गत लोकपूरण अवस्था को प्राप्त केवली

पृ. ३०-३२ वेदनीय कर्म की अनुत्कृष्ट वेदना क्षेत्र के स्वामी
१) प्रतर समुद्घात प्राप्त केवली → केवलिसमुद्घात से विशेष हीन
२) सब से बड़ी अवगाहना द्वारा कपाट समुद्घात को प्राप्त केवली → पूर्व के अनुत्कृष्ट क्षेत्र से यह क्षेत्र असंख्यात गुणा हीन है
३) एक प्रदेश कम उत्कृष्ट अवगाहना से कपाट समुद्घात को प्राप्त केवली → पूर्व के क्षेत्र से

DATE

दो जगप्रतर मात्र क्षेत्र की हानि है। (एक प्रदेश प्रमाण चौदह राजू लम्बाई और चौडाई कम होने से दो जगप्रतर कम होते हैं)

४) दो प्रदेश कम उत्कृष्ट अवगाहना से कपाट समुद्घात को प्राप्त केवली → यह भी पूर्व के क्षेत्र की अपेक्षा दो जगप्रतर मात्र से विशेष हीन है।

५) इस प्रकार सान्तर क्रम से साढ़े तीन रत्नि उत्सेध युक्त अवगाहना के विष्कम्भ से हीन पृथु धनुष उत्सेधयुक्त अवगाहना के विष्कम्भ प्रमाण कपाट क्षेत्र के विकल्पों तक ले जाना चाहिए। ये सब पूर्वाभिमुख केवली के क्षेत्र विकल्प समझना।

६) फिर इस सर्व जघन्य अन्तिम क्षेत्र के सदृश उत्तराभिमुख कपाट क्षेत्र को ग्रहण करके एक-एक प्रदेश कम करके जघन्य कपाट क्षेत्र को प्राप्त होने तक क्षेत्रविकल्प की प्ररूपणा करना चाहिए।

७) तीन विग्रह काण्डकों द्वारा सातवी पृथिवी में मारणान्तिक समुद्घात को प्राप्त महामत्स्य अनुत्कृष्ट क्षेत्र का स्वामी है। जघन्य कपाट क्षेत्र से महामत्स्य का उत्कृष्ट क्षेत्र असंख्यात गुणा हीन है।

८) यहाँ से आगे ज्ञानावरण के समान क्षेत्र विकल्पों की प्ररूपणा करना चाहिए। दण्डगत केवली के संख्यात प्रतरांगुल मात्र क्षेत्रस्थान महामत्स्य क्षेत्र के भीतर आ जाते हैं।

उत्कृष्ट स्थान में जीव → संख्यात हैं।
कपाट समुद्घातगत केवली के जघन्य क्षेत्रविकल्प तक → संख्यात जीव
महामत्स्य के उत्कृष्ट क्षेत्र से लेकर त्रसयोग्य क्षेत्रों में → असंख्यात जीव
वनस्पति कायिक योग्य क्षेत्रों में → अनन्त जीव

भागाभाग और अल्पबहुत्व ज्ञानावरण के समान जानना।

पृ. 33 इसी प्रकार आयु, नाम व गोत्र कर्म के उत्कृष्ट एवं अनुत्कृष्ट वेदना क्षेत्रों की प्ररूपणा करनी चाहिए।

ज्ञानावरणीय की जघन्य वेदना क्षेत्र का स्वामी → ऋजुगति से उत्पन्न हुआ तृतीय समय में वर्तमान, सब से जघन्य योग युक्त, सब से जघन्य अवगाहना युक्त सूक्ष्म निगोद लब्ध्यपर्याप्तक जीव । जघन्य अवगाहना = उत्सेध घनांगुल / पल्योपम का असंख्यातवां भाग = ६/प/a

पृ. ३६ ज्ञानावरण के अजघन्य क्षेत्रवेदना के विकल्प →
जघन्य क्षेत्र से भिन्न क्षेत्रवेदना अजघन्य है।
जघन्य क्षेत्रवेदना + 1 प्रदेश = जघन्य (प्रथम) अजघन्य क्षेत्रवेदना

DATE

१ प्रदेश बढ़ने पर भी यह असंख्यात भागवृद्धि होती है। क्योंकि जघन्य अवगाहना में जघन्य अवगाहना का भाग देने पर एक लब्ध आता है। जघन्य अवगाहना घनांगुल का असंख्यातवाँ भाग है। असंख्यात का भाग देकर जो लब्ध आता है उतना बढ़ता है तब उसे असंख्यात भागवृद्धि कहते है वह लब्ध चाहे १ हो, २ हो अथवा संख्यात, असंख्यात अथवा अनन्त हो वह असंख्यात भागवृद्धि ही कहलाती है इसलिए यहां एक प्रदेश बढ़ने पर भी असंख्यात भागवृद्धि कही है।

जघन्य अवगाहना → अंकसंदृष्टि

उपरिम विरलन राशि →	पल्योपम का असंख्यातवाँ भाग	१०
देयराशि →	घनांगुल	४८०
लब्ध →	जघन्य अवगाहना	४८

४८ ४८ ४८ ४८ ४८ ४८ ४८ ४८ ४८ ४८

उपरिम विरलन १ १ १ १ १ १ १ १ १ १

१) अजघन्य जघन्य अवगाहना का भागहार → अंकसंदृष्टि

अधस्तन विरलन राशि →	जघन्य अवगाहना	४८
देयराशि →	उपरिम एक अंक पर प्राप्त राशि	४८
लब्ध →	एक प्रदेश	१

१ १ १ १ १ १ १ १ १

अध.विरलन १ १ १ १ १ १ १ १ १ ...... ४८ बार

उपरिम एक अंक पर प्राप्त राशि + अधस्तन विरलन पर प्राप्त राशि = इच्छित राशि

४८ + १ = ४९ अजघन्य जघन्य अवगाहना अर्थात् अजघन्य अवगाहना का प्रथम भेद

इसका भागहार निकालने के लिए त्रैराशिक करते है →

प्रमाण राशि	फलराशि	इच्छाराशि
अधस्तन विरलन + १ में	१ की हानि	उपरिम विरलन में कितनी हानि?
४८ + १ = ४९	१	१० ?

$$\frac{\text{फल} \times \text{इच्छा}}{\text{प्रमाण}} \quad \frac{1 \times 10}{49} = \frac{10}{49}$$ हानिरूप अंक

(१० में) ४८० में १० का भाग दिया तो ४८ लब्ध आया अब ४९ लब्ध लाने के लिए उपर्युक्त भागहार में कितनी हानि होगी? लब्ध बढ़ता है तो भागहार छोटा होता है। जो हानिरूप अंक आये उसको

उपरिम विरलन − हानिरूप अंक = इच्छित भागहार

$$10 - \frac{10}{49} = \frac{10 \times 49}{49} - \frac{10}{49} = \frac{490 - 10}{49} = \frac{480}{49}$$ अजघन्य जघन्य अवगाहना का भागहार

घनांगुल ÷ उपर्युक्त भागहार = अजघन्य जघन्य (प्रथम) अवगाहना का प्रमाण

$$480 \div \frac{480}{49} = \frac{480 \times 49}{480} = 49$$ " " " "

classmate

PAGE

DATE

पृ.३८

2) जघन्य (अवगाहना) [क्षेत्रवेदना] + 2 आकाश प्रदेश = द्वितीय अजघन्य क्षेत्र ४८+२=५०

यहाँ भी असंख्यात भागवृद्धि ही है।

इसको भागहार निकालने के लिए अधस्तन विरलन उपर्युक्त अधस्तन विरलन का द्वितीय भाग लेना

		अंकसंदृष्टि
द्वितीय अजघन्य क्षेत्र का भागहार →		
अधस्तन विरलन	= जघन्य अवगाहना ÷ 2	४८ ÷ 2 = २४
देयराशि	= जघन्य अवगाहना का प्रमाण	४८
लब्ध	= 2 प्रदेश	2

देय 2 2 2 2 2 2

विरलन १ १ १ १ १ १ ------ २४ बार

हानिरूप अंक निकालने के लिए त्रैराशिक

प्रमाण	फल	इच्छा
अधस्तन विरलन+१ में	१ की हानि	उपरिम विरलन में कितनी हानि
२४+१=२५	१	१० ?

$$\frac{\text{फल}\times\text{इच्छा}}{\text{प्रमाण}} = \frac{१\times१०}{२५} = \frac{१०}{२५}$$ भागहार में हानिरूप अंक

उपरिम विरलन − हानिरूप अंक = इच्छित भागहार

$$१० - \frac{१०}{२५} = \frac{२५०-१०}{२५} = \frac{२४०}{२५}$$ = द्वितीय अजघन्य क्षेत्र[वेदना] का भागहार

घनांगुल ÷ इच्छित भागहार = द्वितीय अजघन्य क्षेत्र

$$४८० \div \frac{२४०}{२५} = \frac{४८०\times२५}{२४०} = ५०$$ द्वितीय अजघन्य क्षेत्रवेदना

जघन्य अवगाहना + 3 आकाशप्रदेश = तृतीय अजघन्य क्षेत्रवेदना

४८ + 3 = ५१

यहाँ भागहार का प्रमाण लाने के लिए अधस्तन विरलन पूर्वोक्त अधस्तन विरलन का तृतीय भाग लेना

$$\frac{\text{उपरिम विरलन}}{\frac{\text{अधस्तन विरलन}}{3}+१} = \text{हानिरूप अंक} \quad \frac{१०}{\frac{४८}{3}+१} = \frac{१०}{\frac{५१}{3}} = \frac{१०\times3}{५१} = \frac{३०}{५१}$$ हानिरूप अंक

अथवा $\frac{१०}{१७}$ हानिरूप अंक

DATE

उपरिम विरलन − हानिरूप अंक = इच्छित भागहार

$$१० - \frac{१०}{१७} = \frac{१७०-१०}{१७} = \frac{१६०}{१७}$$ = तृतीय अजघन्य क्षेत्रवेदना का भागहार

घनांगुल ÷ इच्छित भागहार = तृतीय अजघन्य क्षेत्रवेदना

$$४८० \div \frac{१६०}{१७} = \frac{४८० \times १७}{१६०} = ३ \times १७ = ५१$$ तृतीय अजघन्य क्षेत्रवेदना

इस प्रकार एक-एक आकाश प्रदेश बढ़ाकर जघन्य परीतासंख्यात प्रमाण आकाश प्रदेशों की वृद्धि होने तक ले जाना चाहिए।

जघन्य क्षेत्रवेदना + जघन्य परीतासंख्यात प्रमाण प्रदेश = असंख्यातवीं (जघन्य परीत) अजघन्य क्षेत्रवेदना

जघन्य परीतासंख्यात ४ माना

४८ + ४ = ५२ = जघन्य परीतासंख्यातवी अजघन्य क्षेत्रवेदना

यहाँ भागहार का प्रमाण →

प्रमाण	फल	इच्छा
$\left(\frac{\text{अधस्तन विरलन}}{\text{जघन्य परीतासंख्यात}}\right)$ +१ में	१ की हानि	उपरिम विरलन में कितनी हानि?
$\left(\frac{४८}{४}\right) + १ = १२+१ = १३$	१	१० ? = $\frac{१०}{१३}$ हानिरूप अंक

उपरिम विरलन − हानिरूप अंक = इच्छित भागहार

$$१० - \frac{१०}{१३} = \frac{१३०-१०}{१३} = \frac{१२०}{१३}$$ जघन्य परीतासंख्यातवी अजघन्य क्षेत्रवेदना का भागहार

घनांगुल ÷ इच्छित भागहार = जघन्य परीतासंख्यातवी अजघन्य क्षेत्रवेदना

$$४८० \div \frac{१२०}{१३} = \frac{४८० \times १३}{१२०} = ४ \times १३ = ५२$$ " " "

जितनेवाँ क्षेत्रविकल्प निकालना हो उतनी संख्या से प्रथम अधस्तन विरलन को भाग देने पर विवक्षित विकल्प लाने के लिए अधस्तन विरलन होता है जैसे तीसरा विकल्प लाने के लिए अधस्तन विरलन में तीन का भाग दिया।

इस प्रकार एक कम उपरिम विरलन से जघन्य अवगाहना को खण्डित करने पर जो लब्ध आता है उतने जघन्य क्षेत्र के विकल्पों के बीत जाने पर भागहार में एक रूप की हानि पायी जाती है।

अंकसंदृष्टि

अधस्तन विरलन राशि (उपरिम विरलन − १) : १०-१ = ९

देयराशि → जघन्य क्षेत्र (जघन्य अवगाहना) ४८

लब्ध → वृद्धि प्रमाण ४८ ÷ ९ = $५\frac{१}{३}$

$५\frac{१}{३}$	$५\frac{१}{३}$	$५\frac{१}{३}$	$५\frac{१}{३}$	$५\frac{१}{३}$	$५\frac{१}{३}$	$५\frac{१}{३}$	$५\frac{१}{३}$	$५\frac{१}{३}$
१	१	१	१	१	१	१	१	१

DATE

$४८ + ५\frac{१}{३} = ५३\frac{१}{३}$

पृ. ३८

प्रमाण	फल	इच्छा	
अधस्तन विरलन +१ में	१ की हानि	उपरिम विरलन में कितनी हानि?	
९+१ = १०	१	१० ?	$\frac{१०}{१०}$ = १ हानिरूप अंक

उपरिम विरलन − हानिरूप अंक = इच्छित भागहार
१० − १ = ९ इच्छित भागहार

इस प्रकार जघन्य अवगाहना को जघन्य परीतासंख्यात से खण्डित करके उसमें से एक खण्ड मात्र वृद्धि हो जाने पर भी असंख्यात भागवृद्धि ही रहती है क्यों कि यहाँ तक सभी भागहार असंख्यात प्रमाण ही हैं।

जघन्य अवगाहना + $\frac{\text{जघन्य अवगाहना}}{\text{जघन्य परीतासंख्यात}}$ = असंख्यात भागवृद्धि युक्त अजघन्य क्षेत्र

$४८ + \frac{४८}{४} = ४८ + १२ = ६०$ असंख्यात भागवृद्धि युक्त अजघन्य क्षेत्र

	अंकसंदृष्टि
इसका भागहार लाने के लिए हानिरूप अंक	
अधस्तन विरलन = जघन्य परीतासंख्यात	४
देयराशि = जघन्य अवगाहना	४८
लब्ध = वृद्धिरूप अंक	१२

$\underset{१}{१२}\quad\underset{१}{१२}\quad\underset{१}{१२}\quad\underset{१}{१२}$

प्रमाण	फल	इच्छा	
अधस्तन विरलन+१ में	१ की हानि	उपरिम विरलन में कितनी?	
४+१ = ५	१	१० ?	$\frac{१०}{५}$ = २ हानिरूप अंक

उपरिम विरलन − हानिरूप अंक = इच्छित भागहार
१० − २ = ८ " "

घनांगुल ÷ इच्छित भागहार = विवक्षित अजघन्य क्षेत्र
$४८० \div ८ = ६०$ असंख्यात भागवृद्धि युक्त विवक्षित अजघन्य क्षेत्र

इस क्षेत्र के ऊपर एक प्रदेश बढ़ने पर भी असंख्यात भागवृद्धि ही होती है क्यों कि जघन्य अवगाहना में उत्कृष्ट संख्यात का भाग देने पर जो लब्ध आता है उतनी वृद्धि होने तक असंख्यात भागवृद्धि ही कहलाती है।

DATE

जघन्य अवगाहना + $\frac{\text{जघन्य अवगाहना}}{\text{उत्कृष्ट संख्यात}}$ = संख्यात भागवृद्धि युक्त प्रथम अजघन्य अवगाहना क्षेत्र

$४८ + \frac{४८}{३} = ४८ + १६ = ६४$ संख्यात भा. वृ. युक्त प्रथम अजघन्य क्षेत्र

उत्कृष्ट संख्यात का प्रमाण ३ माना। ४९ से ६३ तक असंख्यात भागवृद्धि के अजघन्य स्थान विकल्प

पृ. ३९ यहाँ भागहार का प्रमाण → अंक संदृष्टि

अधस्तन विरलन → उत्कृष्ट संख्यात	३
देयराशि → जघन्य अवगाहना	४८
लब्ध → वृद्धिरूप प्रदेश	१६

देय १६ १६ १६
विरलन १ १ १

हानिरूप अंक →

प्रमाण राशि	फल	इच्छा
अधस्तन विरलन+१ में	१ की हानि	उपरिम विरलन में कितनी हानि
३+१ = ४	१	१० ? $= \frac{१०}{४}$ हानिरूप अंक

उपरिम विरलन - हानिरूप अंक = इच्छित भागहार

$१० - \frac{१०}{४} = \frac{४०-१०}{४} = \frac{३०}{४}$ = संख्यात भा. वृ. युक्त प्रथम अवगाहना क्षेत्र का भागहार

घनांगुल ÷ इच्छित भागहार = " " " " क्षेत्र

$४८० \div \frac{३०}{४} = \frac{४८० \times ४}{३०} = १६ \times ४ = ६४$ " " " " "

यहाँ से लेकर आगे संख्यात भागवृद्धि ही होकर जाती है जब तक जघन्य अवगाहना प्रमाण ही प्रदेश नहीं बढ़ जाते। ६४ से ९५ तक संख्यात भाग वृद्धि के स्थान

जघन्य अवगाहना + जघन्य अवगाहना = संख्यात गुणवृद्धि का प्रथम स्थान

$४८ + ४८ = ९६$ अथवा

जघन्य अवगाहना × २ = ४८ × २ = ९६ " " " "

इसके आगे एक प्रदेश अधिक, दो प्रदेश अधिक इत्यादि क्रम से वृद्धि होकर जघन्य क्षेत्र प्रमाण प्रदेशों के बढ़ जाने पर तिगुणी वृद्धि होती है

जघन्य अवगाहना × ३ = ४८ × ३ = १४४ = तिगुणी वृद्धियुक्त अजघन्य क्षेत्र विकल्प

इसका भागहार = जघन्य अवगाहना भागहार ÷ ३ = $\frac{१०}{३}$ " " " का भागहार

$४८० \div \frac{१०}{३} = \frac{४८० \times ३}{१०} = ४८ \times ३ = १४४$ तिगुणी वृद्धियुक्त " "

classmate

DATE

इसी प्रकार इसके पश्चात् एक प्रदेश, दो प्रदेश अधिक इत्यादि क्रम से
जघन्य अवगाहना × ४ = चतुर्गुणी वृद्धियुक्त अजघन्य क्षेत्रविकल्प

इसका भागहार = जघन्य अवगाहना का भागहार ÷ ४

इस प्रकार जघन्य अवगाहना सम्बन्धी गुणकार के उत्कृष्ट संख्यात मात्र हो जाने तक ले जाना चाहिये।

उस अवगाहना का भागहार = जघन्य अवगाहना भागहार ÷ उत्कृष्ट संख्यात

इसके ऊपर एक प्रदेश अधिक, दो प्रदेश अधिक इत्यादि क्रमसे

पृ.४० जघन्य अवगाहना × जघन्य परीतासंख्यात = असंख्यात गुणवृद्धि का प्रथम स्थान

४८ × ४ = १९२ असंख्यात गुण वृद्धियुक्त प्रथम स्थान

९६ से १९१ तक संख्यात गुणवृद्धि के स्थानविकल्प

जघन्य अवगाहना भागहार ÷ जघन्य परीतासंख्यात = असंख्यात गुणवृद्धि युक्त प्रथम स्थान का भागहार

$१० \div ४ = \frac{१०}{४}$

$४८० \div \frac{१०}{४} = \frac{४८० \times ४}{१०} = ४८ \times ४ = १९२$ संख्यात गुणवृद्धि युक्त स्थान

सूक्ष्म निगोद लब्ध्यपर्याप्तकी जघन्य अवगाहना × $\frac{\text{आवली}}{\text{असंख्यात}}$ = सूक्ष्म वायुकायिक लब्ध्यपर्याप्त के जघन्य अवगाहना

वहाँ तक एक-एक प्रदेश अधिक के क्रम से असंख्यात गुणवृद्धियुक्त स्थान पाये जाते हैं।

पृ.४० २) सूक्ष्म वायुकायिक लब्ध्यपर्याप्तक जघन्य अवगाहना +१ प्रदेश, +२ प्रदेश ..... चार वृद्धियाँ सब जगह
३) सूक्ष्म तेजस्कायिक " " ", +१ प्रदेश, +२ प्रदेश .. चार वृद्धियाँ "
४) " जलकायिक " " ", +१ प्रदेश, +२ प्रदेश .... चार वृद्धियाँ "
५) " पृथ्वीकायिक " " ", +१ प्रदेश, +२ प्रदेश ... चार वृद्धियाँ "
गुणकार पल्योपम ÷ असंख्यात
६) बादर वायुकायिक " " ", +१ प्रदेश, +२ प्रदेश ... चार वृद्धियाँ
७) बादर तेजकायिक " " ", +१ प्रदेश, +२ प्रदेश .... चार वृद्धियाँ
८) " जलकायिक " " ", +१ प्रदेश, +२ प्रदेश ...... " "
९) " पृथ्वीकायिक " " ", +१ प्रदेश, +२ प्रदेश .... " "
१०) " निगोद " " ", +१ प्र., +२ प्र. ...... " "
११) " निगोद प्रतिष्ठित " " ", +१ प्र, +२ प्र ...... " "
१२) " वनस्पति प्रत्येक शरीर " " ", +१ प्र., +२ प्र. ...... " "
१३) " द्वीन्द्रिय " " ", +१ प्र., +२ प्र. ...... " "
१४) " त्रीन्द्रिय " " ", +१ प्र., +२ प्र. ...... " "

DATE

१४) चतुरिन्द्रिय लब्ध्यपर्याप्तक जघन्य अवगाहना, +१प्रदेश, +२प्रदेश ..... ४ वृद्धियाँ
१५) पञ्चेन्द्रिय " " " , +१प्रदेश, +२प्रदेश -- ४ वृद्धियाँ
१६) सूक्ष्म निगोद निर्वृत्तिपर्याप्तक जघन्य अवगाहना, +१ प्रदेश, +२प्रदेश -- ~~वृद्धियाँ~~
यहाँ गुणकार आवली का असंख्यातवाँ भाग है। इसके आगे
क्रम से आवली के असंख्यातवें भाग से खण्डित एक खण्ड प्रमाण प्रदेश बढ़ाने पर
१७ सूक्ष्म निगोद निर्वृत्त्यपर्याप्तक उत्कृष्ट अवगाहना, +१प्रदेश, +२ प्रदेश... १ असंख्यात भा.वृ.
१८ सूक्ष्म निगोद निर्वृत्तिपर्याप्तक " " , +१प्रदेश, +२प्रदेश --- ४ वृद्धियाँ बढ़ाना
१९ सूक्ष्म वायुकायिक " जघन्य अवगाहना, +१प्र, +२प्र. ---- १ असंख्यात भा.वृ.
२१ सूक्ष्म " निर्वृत्त्यपर्याप्तक उत्कृष्ट अवगाहना, +१प्र, +२प्र. --- १ असंख्यात भा.वृ.
२२ सूक्ष्म " निर्वृत्तिपर्याप्तक उत्कृष्ट अवगाहना, +१प्र, +२प्र ..... ४ वृद्धियाँ
२३ सूक्ष्म तेजकायिक निर्वृत्तिपर्याप्तक जघन्य अवगाहना, +१प्र, +२प्र. ..... १ असंख्यात भा.वृ.
२४ " " निर्वृत्त्यपर्याप्तक उत्कृष्ट अवगाहना, +१प्र, +२प्र ---- १ " "
२५ " " निर्वृत्तिपर्याप्तक उत्कृष्ट अवगाहना, +१प्र, +२प्र. ---- ४ वृद्धियाँ
२६ सूक्ष्म जलकायिक " जघन्य " , +१प्र, +२प्र. ---- १ असंख्यात भा.वृ.
२७ " " निर्वृत्त्यपर्याप्तक उत्कृष्ट " , +१प्र, +२प्र. ---- १ " "
२८ " " निर्वृत्तिपर्याप्तक उत्कृष्ट " , +१प्र, +२प्र. ---- ४ वृद्धियाँ
२९ सूक्ष्म पृथिवीकायिक " जघन्य " , +१प्र., +२प्र -- १ असंख्यात भा.वृ.
३० " " निर्वृत्त्यपर्याप्तक उत्कृष्ट " +१प्र. , +२प्र. ---- १ " "
३१ " " निर्वृत्तिपर्याप्तक उत्कृष्ट " +१प्र. , +२प्र ---- ४ वृद्धियाँ
यहाँ गुणकार पल्योपम का असंख्यातवाँ भाग है। इसके आगे
३२ बादर वायुकायिक निर्वृत्तिपर्याप्तक जघन्य अवगाहना, +१प्र, +२प्र. ----- १ असंख्यात भा.वृ.
३३ " " निर्वृत्त्यपर्याप्तक उत्कृष्ट अवगाहना, +१प्र., +२प्र ---- १ " "
३४ " " निर्वृत्तिपर्याप्तक " " , +१प्र. +२प्र. ---- ४ वृद्धियाँ
३५ बादर तेजोकायिक " जघन्य अवगाहना, +१प्र., +२प्र. ---- १ असंख्यात भा.वृ.
३६ " " निर्वृत्त्यपर्याप्तक उत्कृष्ट अवगाहना, +१प्र., +२प्र. ---- १ " "
३७ " " निर्वृत्तिपर्याप्तक " " , +१प्र., +२प्र. ---- ४ वृद्धियाँ
३८) बादर जलकायिक निर्वृत्तिपर्याप्तक जघन्य अवगाहना, +१प्र. +२प्र. ---- १ असंख्यात भा.वृ.
३९) " " निर्वृत्त्यपर्याप्तक उत्कृष्ट " , +१प्र. +२प्र. ---- १ " "
४०) " " निर्वृत्तिपर्याप्तक उत्कृष्ट " , +१प्र. +२प्र. ---- ४ वृद्धियाँ
४१) बादर पृथिवीकायिक निर्वृत्तिपर्याप्तक जघन्य " , +१प्र, +२प्र ---- १ असंख्यात भा.वृ.
४२) बादर " निर्वृत्त्यपर्याप्तक उत्कृष्ट " , +१प्र, +२प्र. ---- १ असंख्यात भा.वृ.
४३) बादर " निर्वृत्तिपर्याप्तक उत्कृष्ट " , +१प्र., +२प्र. ---- ४ वृद्धियाँ
४४) बादर निगोद निर्वृत्तिपर्याप्तक जघन्य " , +१प्र., +२प्र. ---- १ असंख्यात भा.वृ.
४५) " " निर्वृत्त्यपर्याप्तक उत्कृष्ट " , +१प्र., +२प्र. ---- १ असंख्यात भा.वृ.

classmate

DATE

४६) बादर निगोद निर्वृत्तिपर्याप्तक उत्कृष्ट अवगाहना, +१, +२ ------ ४ वृद्धियों से बढ़ाना

४७) बादर निगोदप्रतिष्ठित " जघन्य अवगाहना, +१, +२, ----- १ असंख्यात भा.वृ. "

४८) " " निर्वृत्त्यपर्याप्तक उत्कृष्ट अवगाहना, +१, +२, ----- १ " " "

४९) " " निर्वृत्तिपर्याप्तक ~~--~~ उत्कृष्ट अवगाहना, +१, +२ ------ ४ वृद्धियों से बढ़ाना

५०) बादर वनस्पतिकायिक प्रत्येकशरीर पर्याप्तक जघन्य अवगाहना, +१, +२, ---- ४ वृद्धियों से ~~बढ़ाना~~

५१) द्वीन्द्रिय निर्वृत्तिपर्याप्तक जघन्य अवगाहना तक बढ़ाना। यहाँ अवगाहना उत्सेध घनांगुल का संख्यातवाँ भाग होती है। इसके आगे +१, +२, ... ३ वृद्धियों से बढ़ाना

५२) त्रीन्द्रिय निर्वृत्तिपर्याप्तक जघन्य अवगाहना, +१प्रदेश, +२प्र. ..... ३ वृद्धियों से बढ़ाकर

५३) चतुरिन्द्रिय " " " , +१प्र., +२प्र. ---- ३ वृद्धियों से "

५४) पञ्चेन्द्रिय " " " , +१प्र., +२प्र. ---- ३ वृद्धियों से "

५५) त्रीन्द्रिय निर्वृत्त्यपर्याप्तक उत्कृष्ट " , +१प्र., +२प्र. ----- ३ वृद्धियों "

५६) चतुरिन्द्रिय " " " +१प्र. +२प्र. ----- ३ वृद्धियों से "

५७) द्वीन्द्रिय " " " +१प्र. +२प्र. ------ ३ वृद्धियों से "

५८) बादर वनस्पतिकायिक प्रत्येकशरीर निर्वृत्त्यपर्याप्तक उत्कृष्ट अवगाहना ------ ३ वृद्धियों से "

५९) पञ्चेन्द्रिय निर्वृत्त्यपर्याप्तक उत्कृष्ट अवगाहना, +१प्र. +२प्र ---- ३ वृद्धियों से "

६०) त्रीन्द्रिय निर्वृत्तिपर्याप्तक उत्कृष्ट अवगाहना +१प्र. +२प्र ------ ३ वृद्धियों से "

६१) चतुरिन्द्रिय " " " +१प्र +२प्र. ३ वृद्धियों से "

६२) द्वीन्द्रिय " " " +१प्र. +२प्र. ------ ३

६३) बादर वनस्पतिकायिक प्रत्येकशरीर निर्वृत्तिपर्याप्तक उत्कृष्ट अवगाहना, +१प्र. +२प्र. ---- ३ वृद्धियों से बढ़ाना

६४) पञ्चेन्द्रिय निर्वृत्तिपर्याप्तक उत्कृष्ट अवगाहना (महामत्स्य की अवगाहना १२,५०,०००,०० योजन

इसके अनन्तर का अजघन्य क्षेत्र →

१) विष्कम्भ व उत्सेध की अपेक्षा महामत्स्य के समान और महामत्स्य के आयाम से संख्यात गुणे हीन आयाम और मुखप्रदेश में एक आकाश प्रदेश की वृद्धिवाला महामत्स्य यदि वेदना के बिना एक हजार योजन तक मारणान्तिक समुद्घात करता है तो उसकी अवगाहना पूर्वोक्त महामत्स्य की अवगाहना से एक प्रदेश अधिक होती है,

२) मुख में दो प्रदेश अधिक मत्स्य के द्वारा १००० योजन मारणान्तिक समुद्घात किये जानेपर पूर्व क्षेत्र की अपेक्षा दो प्रदेशों अधिक अजघन्य क्षेत्र होता है।

इस प्रकार इस क्रम से संख्यात प्रतरांगुल प्रमाण आकाशप्रदेशों को बढ़ाना चाहिए इसके बाद एक प्रदेश अधिक एक हजार योजन मारणान्तिक समुद्घात करनेवाले मत्स्य का अजघन्य क्षेत्र होता है।

फिर इसके साथ मुख में एक-एक प्रदेश बढ़ाकर संख्यात प्रतरांगुल प्रमाण विकल्प फिर दो प्रदेश अधिक १००० योजन मारणान्तिक समुद्घात करनेवाले का क्षेत्र जानना।

इस प्रकार इस क्रम से साधिक साढ़े सात राजु प्रमाण आयाम हो जाने तक बढ़ाना चाहिए

DATE

पृ.७३

इस क्षेत्र से, लोकनाली की वायव्य दिशा से तीन विग्रहकाण्डक करके मारणान्तिक समुद्घात से सातवीं पृथिवी के नारकियों में अनन्तर समय में उत्पन्न होने के सन्मुख है उसका क्षेत्र समान है।

इस प्रकार बढ़कर स्थित तथा दूसरा एक वेदना समुद्घात से तिगुणे विष्कम्भ और उत्सेध को करके मारणान्तिक समुद्घात से साढ़े सात राजुओं के नीचे भाग को प्राप्त होकर स्थित हुआ, दोनों का क्षेत्र समान है।

इसके आगे निरन्तर-सान्तर क्रम से आयाम के साढ़े सात राजु प्रमाण को प्राप्त होने तक पहले के समान बढ़ाना चाहिए।

अथवा

सिक्थ मत्स्य को ही मारणान्तिक समुद्घात से तीन विग्रहकाण्डकों को कराकर साधिक साढ़े सात राजु आयाम को प्राप्त कराना चाहिए।

पार्श्वक्षेत्र के बढ़ाते समय एकसाथ पार्श्वक्षेत्र में वृद्धि को प्राप्त साढ़े सात राजुओं को प्रतरांगुल के संख्यातवें भाग से खण्डित करके उसमें से एक खण्ड प्रमाण को आयाम में से कम करके सदृश कर फिर सान्तर-निरन्तर क्रम से कम किये गये क्षेत्र को बढ़ाना चाहिए।

इस प्रकार बार, बार पार्श्वक्षेत्र को बढ़ाकर पूर्व क्षेत्र के समान करके पश्चात् कम किये गये क्षेत्र को बढ़ाकर महामत्स्य के उत्कृष्ट समुद्घात क्षेत्र के सदृश हो जाने तक ले आना चाहिए। यहाँ अजघन्य क्षेत्रसंबंधी प्ररूपणा समाप्त हुई।

इसी प्रकार शेष सात कर्मों के जघन्य और अजघन्य क्षेत्रों की प्ररूपणा करना चाहिए।

अल्पबहुत्व

1) जघन्य पद में आठों कर्मों की वेदनाएँ समान हैं।

2) उत्कृष्ट पद में

ज्ञानावरण, दर्शनावरण, मोहनीय, अन्तराय	— स्तोक	चारों की समान
वेदनीय, आयु, नाम, गोत्र की वेदनाएँ	— असंख्यात गुणी	"

जीवसमासों में अवगाहनाओं का अल्पबहुत्व पूर्वोक्त अजघन्य क्षेत्र की प्ररूपणा से सिद्ध है।

पृ. ६१-७१

		गुणकार का प्रमाण
1)	सूक्ष्म से सूक्ष्म की अवगाहना	आवली ÷ असंख्यात
2)	सूक्ष्म से बादर	पल्योपम ÷ असंख्यात
3)	बादर से सूक्ष्म	आवली ÷ असंख्यात
4)	बादर से बादर	पल्योपम ÷ असंख्यात, संख्यात समय (द्वीन्द्रिय पर्याप्त जघन्य अवगाहना से आगे)

DATE

पृ.७३-७४ अवगाहना	कहाँपर किसके होती है
१) प्रथम सोलह जघन्य अवगाहनाएँ	ऋजुगति से उत्पन्न तीसरे समयवर्ती लब्ध्यपर्याप्तक
२) अपर्याप्त की ग्यारह उत्कृष्ट अवगाहनाएं पर्याप्तक की ग्यारह जघन्य "	अनन्तर समय में पर्याप्त होनेवाले निर्वृत्त्यपर्याप्तक जीवों की जघन्य उपपाद योग और जघन्य एकान्तानुवृद्धि योगसे आकर जघन्य परिणाम योग व जघन्य अवगाहना में रहनेवाले के पर्याप्त होने के प्रथम समय में
पर्याप्तक की उत्कृष्ट अधस्तन ग्यारह अवगाहनाएँ	उत्कृष्ट अवगाहना में वर्तमान पर्याप्त हुए उत्कृष्ट योगवाले जीव के

१ से लेकर ५८ नंबरतक की अवगाहनाए → अंगुल के असंख्यातवें भागमात्र
५९ द्वीन्द्रियादिक पर्याप्त से ५९ तक की " अंगुल के संख्यातवें भागमात्र
६० से ६४ तक उत्कृष्ट अवगाहनाएँ संख्यात घनांगुल

पर्याप्तक की जघन्य और उत्कृष्ट अवगाहना के स्वामी

जीव	जघन्य अवगाहना	स्वामी	उत्कृष्ट अवगाहना	स्वामी
द्वीन्द्रिय पर्याप्तक	अंगुल ÷ संख्यात	अनुन्धरी	१२ योजन	शंख
त्रीन्द्रिय पर्याप्तक	" "	कुन्थु	तीन कोस	गोम्ही
चतुरिन्द्रिय पर्याप्तक	" "	कानमक्षिका	चार कोस	भ्रमर
पञ्चेन्द्रिय पर्याप्तक	" "	सिक्थमत्स्य	५०० यो. उत्सेध २५० यो. विस्तार १००० यो. आयाम	महामत्स्य
एकेन्द्रिय पर्याप्तक			१हजार यो. आयाम, १ योजन विस्तार	कमल

पृ. ७५-७७

वेयणकालविहाणं

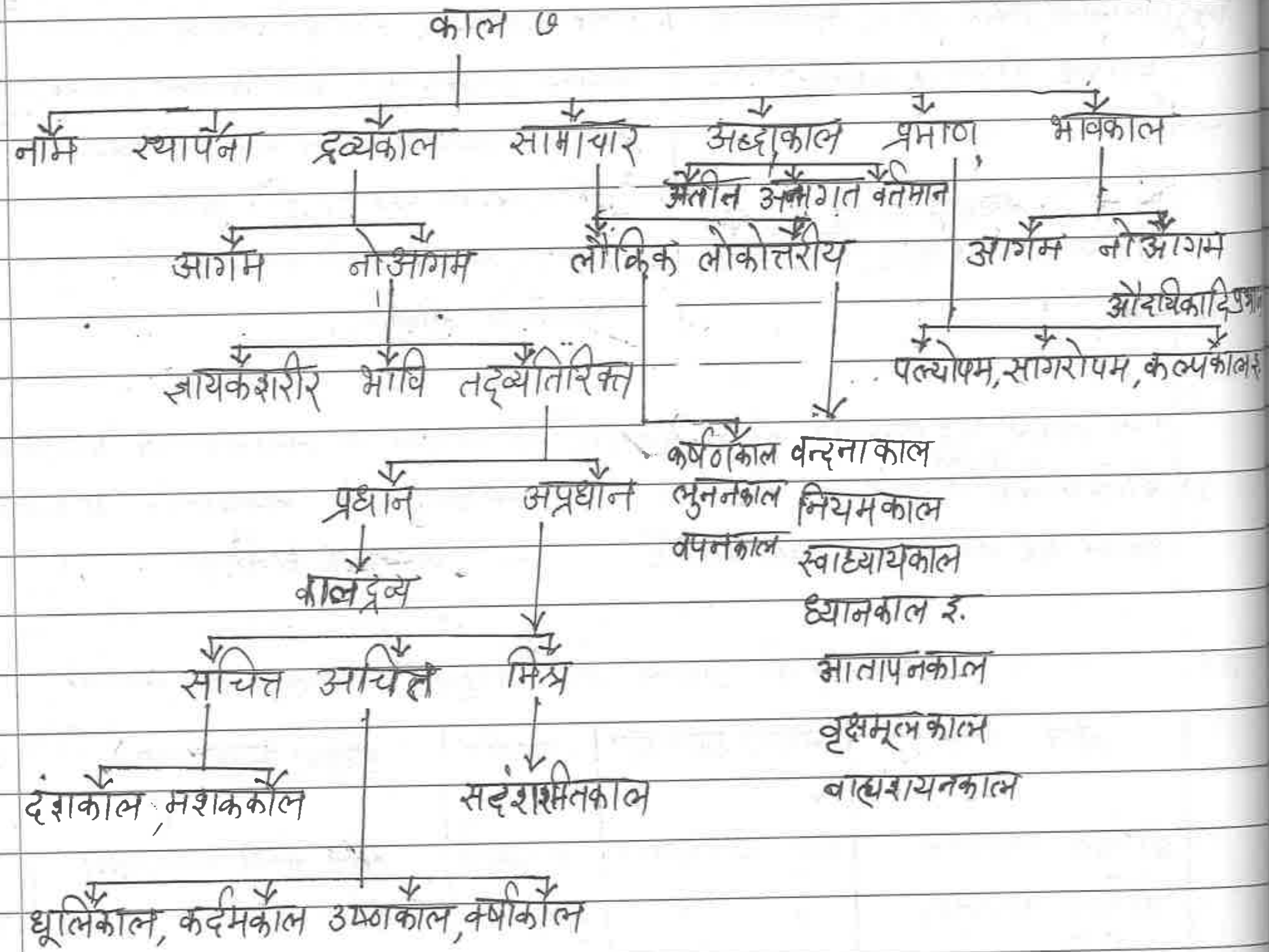

कर्षणकाल → जोतने का काल, लुननकाल → फसल की कटाई का काल
वपनकाल → बोने का काल

पृ. ७८ से ८४	सामान्य	उत्कृष्ट	अनुत्कृष्ट	जघन्य	अजघन्य	सादि	अनादि	ध्रुव	अध्रुव	ओज	युग्म	ओम	विशिष्ट	नोम-नोविशिष्ट
उत्कृष्ट	✓	✓			✓	✓	✓	✓	✓		✓			✓
अनुत्कृष्ट	✓		✓	✓	✓	✓	✓	✓	✓	✓	✓	✓	✓	✓
जघन्य	✓		✓	✓		✓	✓	✓	✓	✓				✓
अजघन्य	✓	✓	✓		✓	✓	✓	✓	✓	✓	✓	✓	✓	✓
सादि	✓	✓	✓	✓	✓	✓	✓	✓	✓	✓	✓	✓	✓	✓
अनादि	✓		✓		✓		✓	✓		✓	✓	✓	✓	✓
ध्रुव	✓		✓		✓		✓	✓		✓	✓	✓	✓	✓
अध्रुव	✓	✓	✓	✓	✓	✓	✓	✓	✓	✓	✓	✓	✓	✓
ओज	✓		✓	✓	✓	✓	✓	✓	✓	✓		✓	✓	✓
युग्म	✓	✓	✓		✓	✓	✓	✓	✓		✓	✓	✓	✓
ओम	✓		✓		✓	✓	✓	✓	✓	✓	✓	✓		
विशिष्ट	✓		✓		✓	✓	✓	✓	✓	✓	✓		✓	
नोमनोविशिष्ट	✓	✓	✓	✓	✓	✓	✓	✓	✓	✓	✓			✓

classmate

DATE

इसी प्रकार शेष सातों कर्मों के उत्कृष्ट आदि पदों की प्ररूपणा करना चाहिए
स्वामित्व दो प्रकार का है - जघन्य पद में और उत्कृष्ट पद में
जघन्य और उत्कृष्ट के भेद क्षेत्रवेदना में जैसे निरूपित किये है वैसा ही जानना

८ से १० ज्ञानावरणीय वेदना काल की अपेक्षा उत्कृष्टवेदना का स्वामी
1) संज्ञी पंचेन्द्रिय पर्याप्त, मिथ्यादृष्टि
2 कर्मभूमिज अकर्मभूमिज (भोगभूमिज नहीं लेना, देव नारकी लेना)।
3) कर्मभूमिप्रतिभागोत्पन्न - स्वयंप्रभ पर्वत के बाह्यभाग से लेकर स्वयंभूरमण समुद्रतक उत्पन्न हुए तिर्यंच
४ संख्यात वर्षायुष्क → ढाई द्वीप समुद्रों में उत्पन्न हुए तथा कर्मभूमिप्रतिभाग में उत्पन्न हुए जीव
५ असंख्यात वर्षायुष्क → देवनारकियों को ग्रहण करना, एक समय अधिक पूर्वकोटि आदि उपरिम आयुविकल्पों से संयुक्त तिर्यंच और मनुष्यों का ग्रहण नहीं करना।
देव, मनुष्य, तिर्यंच, नारकी, स्त्रीवेदी, पुरुषवेदी, नपुंसकवेदी, जलचर, स्थलचर, नभचर, साकार उपयोगयुक्त, जागृत, श्रुतोपयोग से युक्त, उत्कृष्ट स्थिति बन्ध के योग्य उत्कृष्ट स्थितिसंक्लेश में वर्तमान अथवा कुछ मध्यम संक्लेश परिणाम से युक्त जीव के ज्ञानावरणीय कर्म की वेदना काल की अपेक्षा उत्कृष्ट होती है।

जघन्य स्थितिबंध से लेकर उत्कृष्ट स्थितिबंध तक के स्थितिभेदों के बंधके कारणभूत स्थितिबंधाध्यवसाय रूप परिणामों में अनुकृष्टि रचना होती है अर्थात् एक-एक स्थितिबंध में कारणभूत असंख्यात लोकप्रमाण स्थितिबंधाध्यवसाय परिणाम है उनके पल्योपम के असंख्यातवें भाग मात्र खण्ड होते हैं। उनमें अन्तिम खण्ड का नाम उत्कृष्ट स्थितिसंक्लेश है। द्विचरम आदि खण्डों को ईषत् मध्यम संक्लेश परिणाम कहते हैं। उन सब खण्डों के परिणामों द्वारा उत्कृष्ट स्थितिबंध होता है। जैसे अंकसंदृष्टि से १६ स्थितिभेद माने हैं उसके बंधके कारणभूत 222 परिणाम माने हैं उसके चार खण्ड किये

१६ वाँ स्थितिभेद 222 | ५४ | ५५ | ५६ | ५७ |
ईषत मध्यम संक्लेश उत्कृष्ट संक्लेश

इस प्रकार उत्कृष्ट संक्लेश और ईषत् मध्यम संक्लेश परिणामों से तीस कोडाकोडि सागरोपम प्रमाण ज्ञानावरणीय का स्थितिबंध होता है।

सू. ११-१२ अनुत्कृष्ट स्थितिवेदना → उत्कृष्ट स्थितिबन्ध से भिन्न अनुत्कृष्ट स्थितिवेदना होती है।
1) उत्कृष्ट स्थिति - १ समय = प्रथम अनुत्कृष्ट स्थिति 280-1 = 239 अंकसंदृष्टि में उत्कृष्ट स्थिति का प्रमाण 280, आबाधाकाण्डक का प्रमाण 30 है उत्कृष्ट आबाधा ८ समय

आबाधाकाण्डक → जितने स्थितिभेदों की आबाधा समान होती है उतने स्थितिभेदों के समूह को एक आबाधाकाण्डक कहते हैं। जैसे 240 से 211 तक के स्थितियों की आबाधा 8 समय है अतः 30 स्थितिभेदों का एक आबाधाकाण्डक होता है। उत्कृष्ट स्थिति ÷ उत्कृष्ट आबाधा = आबाधा काण्डक
240 ÷ 8 = 30 आबाधा काण्डक।

अर्थसंदृष्टि 70 को.2 सागर ÷ 7000 वर्ष = आबाधा काण्डक पल्य का असंख्यातवाँ भाग

उत्कृष्ट स्थिति – 2 समय = दूसरा अनुत्कृष्ट स्थान 240 - 2 = 238 इस क्रमसे
उत्कृष्ट स्थिति – आबाधा काण्डक = मध्यम अनुत्कृष्ट स्थान 240 - 30 = 210
उत्कृष्ट स्थिति – (आबाधा काण्डक +1) = " " " 240 - (30+1) = 209
उत्कृष्ट स्थिति – आबाधा काण्डक x 2 = " " " 240 - (30x2) = 180
इस प्रकार एकेक समय कम करते हुए एक समय कम आबाधाकाण्डक से अधिक ध्रुवस्थिति (जघन्य स्थिति) तक निरन्तर स्थानों को उत्पन्न कराना चाहिये। ध्रुवस्थिति 31 मानी
पृ. 93 (30-1) + ध्रुवस्थिति = 29 + 31 = 60 अन्य अनुत्कृष्ट स्थान
इसमें से एक-एक समय कम करते हुए संज्ञी पंचेन्द्रिय की जघन्य स्थिति तक निरन्तर स्थान उत्पन्न कराना चाहिये।
इसके नीचे के स्थितिबन्ध स्थान संज्ञी पंचेन्द्रियों में नहीं पाये जाते हैं।

अब एकेन्द्रियों में स्थितिसत्त्व का घात करके स्थितिसत्त्व स्थानों का कथन करते हैं → अंकसंदृष्टि में ध्रुवस्थिति का प्रमाण 31, स्थितिकाण्डक का प्रमाण 4, उत्कीरण काल का प्रमाण 4 है।

पंचेन्द्रिय में से एकेन्द्रियों में उत्पन्न होने पर वहाँ के योग्य स्थिति सत्त्व करने के लिए स्थितिकाण्डक घात होते हैं अर्थात् एक-एक अंतर्मुहूर्त काल में सत्त्वमें से स्थिति कम की जाती है। एक-एक समय में एक-एक फालि का पतन होता है स्थि.का. उत्कीरण काल के अंतिम समय में काण्डक प्रमाण संपूर्ण स्थिति का घात होता इसलिए उत्कीरण काल के अंतिम समय के पश्चात् उत्कीरण काल और एक स्थिति काण्डक प्रमाण स्थिति एक साथ कम होगी।

पृ. 94-95 यहाँ उदाहरणरूप से पाँच प्रकार के स्थितिसत्त्व युक्त जीव एक समय में एकेन्द्रियों में उत्पन्न हुए –
प्रथम जीव → (ध्रुवस्थिति) + (उत्कीरण काल – 1 समय) = 31 + (4-1) = 31+3 = 34 समय स्थितिसत्त्व
दूसरा जीव → (ध्रु.स्थि+1) + (उ.का – 1 समय) = (31 + 1) + (4-1) = 32 + 3 = 35 " "
तीसरा जीव → (ध्रु.स्थि+2) + (उ.का – 1 समय) = (31+2) + (4-1) = 33+3 = 36 " "
चौथा जीव → (ध्रु.स्थि+3) + (उ.का – 1 समय) = (31+3) + (4-1) = 34+3 = 37 " "
पाँचवा जीव → (ध्रु.स्थि + स्थि.का) + (उ.का – 1 समय) = (31+4) + (4-1) = 35+3 = 38 " "
इस प्रकार पल्योपम के असंख्यातवें भाग मात्र जीवों को एक समय में एकेन्द्रियों

classmate

DATE

में प्रविष्ट कराना चाहिये। इन जीवों के द्वारा स्थितिघात करते रहने पर ध्रुवस्थिति के नीचे उत्पन्न स्थितिसत्त्व स्थानों का कथन →

प्रथम जीव के – प्रथम फालि का पतन होने पर उत्कीरण काल का एक समय गलता है इसलिए स्थितिसत्त्व में से एक समय कम होगा 34-1 = 33 यह पुनरुक्त स्थान है क्योंकि पहले ध्रुवस्थिति के ऊपर सब स्थान उत्पन्न किये हैं।

प्रथम जीव → द्वितीय फालि का पतन होने पर 34-2=32 यह पुनरुक्त स्थान.
" " तृतीय फालि का " " " 34-3 = 31 " " "
इसको इसी प्रकार स्थापित करके

स्थि. सत्त्व
पाँचवा जीव → प्रथम फालि का पतन होने पर 38-1 = 37 यह पुनरुक्त स्थान है
" " द्वितीय " " " " 38-2 = 36 " " " " है।
" " तृतीय " " " " 38-3 = 35 " " " " "
" " अंतिम " " " " " 38-8 = 30 यह अपुनरुक्त स्थान है।

क्योंकि ध्रुवस्थिति से यह स्थान एक समय कम है। अन्तिम फालि के पतित होने पर उत्कीरण काल और स्थितिकाण्डक का काल दोनों एक साथ कम हुए अतः 4+4=8 समय कम किये।

चौथा जीव → प्रथम फालि के पतन होने पर 37-1 = 36 स्थितिसत्त्व यह पुनरुक्त स्थान
" " द्वितीय फालि के " " " 37-2 = 35 " " " "
" " तृतीय फालि के " " " 37-3 = 34 " " " "
" " अंतिम फालि के " " " 37-8 = 29 " यह अपुनरुक्त स्थान

तीसरा जीव → प्रथम फालि के पतन होने पर 36-1=35 " यह पुनरुक्त स्थान
" " → द्वितीय फालि के " " " 36-2=34 " " " "
" " → तृतीय फालि के " " " 36-3=33 " " " "
" " → अंतिम फालि के " " " 36-8=28 " यह अपुनरुक्त स्थान

दूसरा जीव → प्रथम फालि के पतन होने पर 35-1=34 " पुनरुक्त स्थान
द्वितीय फालि के " " " 35-2=33 " " "
तृतीय " " " " 35-3=32 " " "
अंतिम " " " " 35-8=27 " अपुनरुक्त स्थान
प्रथम जीव → अंतिम फालि के " " " 34-8 = 26 " अपुनरुक्त स्थान

यह स्थितिसत्त्व ध्रुवस्थिति – (स्थितिकाण्डक+1 समय) = 31-(4+1) = 31-5 = 26 समय है।
स्थितिकाण्डक + 1 (=5) प्रमाण अपुनरुक्त स्थान हुए 30, 29, 28, 27, 26.

अब इस प्रकार से स्थितिसत्कर्म स्थानों के द्वितीय स्थितिकाण्डक का आश्रय करके अपुनरुक्त स्थानों की उत्पत्ति को कहते हैं। पूर्वोक्त पांच जीवों में सब से जघन्य स्थितिसत्कर्मिक

DATE

सबसे जघन्य स्थितिसत्ववाला — जीव के द्वारा द्वितीय स्थितिकाण्डक घात करने पर (पहले प्रथम स्थितिकाण्डक घात होने पर २६ स्थितिसत्व रहा है)

प्रथम जीव → द्वि. स्थि. काण्डक की प्रथम फालि के पतन होने पर २६-१ = २५ अपुनरुक्त स्थान
" " द्वितीय " " " " २६-२ = २४ " "
" " तृतीय " " " " २६-३ = २३ " "

पृ. ९८-१०० इस प्रकार एक समय कम उत्कीरण काल प्रमाण अपुनरुक्त स्थान उत्पन्न हुए। उत्कीरण काल के अन्तिम समय में द्वितीय स्थितिकाण्डक की अंतिम फालि को लेकर स्थित जीव को इसी प्रकार स्थापित करके

सर्वोत्कृष्ट स्थितिसत्ववाला — पाँचवा जीव - द्वि. स्थि. काण्डक की प्रथम फालि के पतन होने पर ३०-१ = २९ पुनरुक्त स्थान
" " द्वितीय " " " ३०-२ = २८ " "
" " तृतीय " " " ३०-३ = २७ " "
" " अंतिम " " " ३०-८ = २२ अपुनरुक्त स्थान

उपर्युक्त जीव से एक समय कम स्थितिवाला — चौथा जीव - द्वि. स्थि. काण्डक की प्रथम फालि के पतन होने पर २९-१ = २८ पुनरुक्त स्थान
" " " द्वितीय " " " " २९-२ = २७ " "
" " " तृतीय " " " " २९-३ = २६ " "
" " " अंतिम " " " " २९-८ = २१ अपुनरुक्त स्थान

तीसरा जीव के → द्वि. स्थि. काण्डक की प्रथम फालि के पतन होने पर २८-१ = २७ पुनरुक्त स्थान
" " द्वितीय " " " २८-२ = २६ " "
" " तृतीय " " " २८-३ = २५ " "
" " अंतिम " " " २८-८ = २० अपुनरुक्त स्थान

द्वितीय जीव के → द्वि. स्थि. काण्डक की प्रथम फालि के पतन होनेपर २७-१ = २६ पुनरुक्त स्थान
" " " द्वितीय " " " २७-२ = २५ पुनरुक्त स्थान
तृतीय " " " २७-३ = २४ पुनरुक्त स्थान
" " अंतिम " " " २७-८ = १९ अपुनरुक्त स्थान

ऊपर स्थापित किया हुआ प्रथम जीव के द्वि. स्थि. काण्डक की अंतिम " " " २६-८ = १८ अपुनरुक्त स्थान

इस प्रकार द्वितीय परिपाटी समाप्त हुई।

पृ. १००-१०२ अब तृतीय स्थितिकाण्डक घात करके उपर्युक्त एक अधिक स्थितिकाण्डक (५) प्रमाण जीवों के स्थितिसत्कर्म के द्वारा अनुत्कृष्ट स्थान उत्पन्न करते हैं →

जघन्य स्थितिसत्कर्मिक — प्रथम जीव के - तृतीय स्थितिकाण्डक की प्रथम फालि के पतन होनेपर १८-१ = १७ अपुनरुक्त स्थान
" " द्वितीय " " " १८-२ = १६ " "
" " तृतीय " " " १८-३ = १५ " "

DATE

इस प्रकार एक समय कम उत्कीरण काल प्रमाण अपुनरुक्त स्थान उत्पन्न करके उत्कीरण काल के अन्तिम समय में स्थितिकाण्डक की अन्तिम फालि को उसीप्रकार स्थापित करके

सर्वोत्कृष्ट स्थिति युक्त पाँचवे जीव के तृतीय स्थि.काण्डक की प्रथम फालि के पतन होनेपर 22-1=21 पुनरुक्त
" " " " द्वितीय " " " 22-2=20 "
" " " " तृतीय " " " 22-3=19 "
" " अंतिम " " " 22-8=14 अपुनरुक्त स्थान

चौथे जीव के तृतीय स्थि.काण्डक की प्रथम फालि के पतन होनेपर 21-1=20 पुनरुक्त स्थान
" " " " द्वितीय " " " 21-2=19 पुनरुक्त स्थान
" " " " तृतीय " " " 21-3=18 पुनरुक्त स्थान
" " " " अंतिम " " " 21-8=13 अपुनरुक्त स्थान

तृतीय जीव के तृतीय स्थि.काण्डक की प्रथम फालि के पतन होनेपर 20-1=19 पुनरुक्त स्थान
" " " " " द्वितीय " " " 20-2=18 " "
" " " " " तृतीय " " " 20-3=17 " "
" " " " " अंतिम " " " 20-8=12 अपुनरुक्त स्थान

द्वितीय जीव के तृतीय स्थि काण्डक की प्रथम फालि के पतन होनेपर 19-1=18 पुनरुक्त स्थान
" " " " " द्वितीय " " " 19-2=17 " "
" " " " " तृतीय " " " 19-3=16 " "
" " " " " अंतिम " " " 19-8=11 अपुनरुक्त स्थान

ऊपर स्थापित प्रथम जीव के तृतीय स्थि.काण्डक की अंतिम " " " 18-8=10 " "

इस प्रकार तृतीय परिपाटी की प्ररूपणा की है।

इस प्रकार ध्रुवस्थिति से उत्पन्न होने वाले पल्योपम के असंख्यातवें भाग मात्र स्थितिकाण्डकों का आश्रय करके निरन्तर स्थानों की प्ररूपणा करना चाहिए।

पृ.103. अब एकेन्द्रिय स्थितिबन्ध से सम्पूर्ण उत्कीरणकाल और एक स्थितिकाण्डक से अधिक स्थितिकर्म युक्त जीव लेकर स्थितिकाण्डक घात के द्वारा अनुत्कृष्ट स्थान उत्पन्न कराना चाहिए। यहाँ पर भी एक अधिक स्थितिकाण्डक प्रमाण जीवों को ग्रहण करना।

प्रथम जीव → एकेन्द्रिय स्थितिबन्ध + उत्कीरणकाल + स्थितिकाण्डक =
दूसरा जीव → " + उत्कीरणकाल + स्थितिकाण्डक + 1 समय =
तीसरा जीव → " + उत्कीरणकाल + स्थितिकाण्डक + 2 समय =
चौथा जीव → " + उत्कीरणकाल + स्थितिकाण्डक + 3 समय =

classmate

PAGE

प्रथम जीव के द्वारा प्रथम फालि के विघटित करने पर एक समय गलता है – अपुनरुक्त स्थान

पृ.१०४ " " द्वितीय " " " द्वितीय समय " " "

" " तृतीय " " " तृतीय समय " "

यही क्रम एक समय कम उत्कीरण कालप्रमाण अपुनरुक्त स्थानों के उत्पन्न होने तक चालू रहता है। इसे यहीं पर स्थापित करके पश्चात् विवक्षित जीवों में से पृ.१०६

सर्वोत्कृष्टस्थितिसत्त्ववाले जीव के विवक्षित स्थि.का. की प्रथम फालि गलनेपर १ समय गलता है पुनरुक्त स्थान

" " " " द्वितीय " " २ " " "

" " " " तृतीय " " ३ " " "

यही क्रम एक समय कम उत्कीरणकाल प्रमाण पुनरुक्त स्थानों के बीतने तक समझना।

सर्वोत्कृष्ट स्थितिवाले जीव के विवक्षित स्थि.का. की अंतिम फालि विघटित होने पर अपुनरुक्त स्थान

उपर्युक्त सर्वोत्कृष्ट स्थिति से एक समय कम स्थितिवाले जीव के द्वारा

प्रथम फालि के विघटित किए जाने पर उत्कीरणकाल १ समय गलता है पुनरुक्त स्थान

द्वितीय " " " " " २ " " "

तृतीय " " " " " ३ " " " "

अंतिम " " " " " अपुनरुक्त स्थान उत्पन्न होता है।

पूर्वोक्त जीवसे एक समय कम स्थितिवाले जीव के द्वारा पृ.१०५

प्रथम फालि के विघटित किये जाने पर स्थितिसत्त्व १ समय कम होता है पुनरुक्त स्थान

द्वितीय " " " " " २ " " " " "

तृतीय " " " " " ३ " " " " "

अंतिम " " " " उत्कीरणकाल+स्थितिकाण्डक कम होता है यह अपुनरुक्त स्थान है।

पूर्वोक्त जीव से एक समय कम स्थितिवाले जीव के द्वारा

पृ.१०५ प्रथम फालि के विघटित किए जाने पर स्थितिसत्त्व १ समय कम – पुनरुक्त स्थान

द्वितीय " " " " " २ " " पुनरुक्त स्थान

तृतीय " " " " " ३ " " पुनरुक्त स्थान

अंतिम " " " " " उत्कीरणकाल + स्थितिकाण्डक प्रमाण कम होता है यह अपुनरुक्त स्थान है।

इस प्रकार पल्योपम के असंख्यातवें भाग प्रमाण जीवों के आश्रय से एक कम उत्कीरण काल और स्थितिकाण्डक प्रमाण (3+4=6) अपुनरुक्त स्थानों को उत्पन्न कराके फिर प्रथम में स्थापित अंतिम जीव का आश्रय करके अपुनरुक्त स्थान उत्पन्न करते हैं।

उस जघन्य स्थितिवाले जीव के द्वारा विवक्षित काण्डक की अंतिम फालि के विघटित किये जानेपर एकेन्द्रिय के उत्कृष्ट स्थितिसत्त्व के समान सत्त्व शेष रहता है यह अपुनरुक्त स्थान है। इस जीव का स्थितिसत्त्व उत्कीरण काल और स्थितिकाण्डक

DATE

आयाम से अधिक था अंतिम फालि के विघटित होने पर एक साथ स्थितिकाण्डक आयाम और संपूर्ण उत्कीरण काल एक साथ गलता है तब एकेन्द्रिय के उत्कृष्ट स्थिति बंध सागरोपम के तीन बटे सात भागप्रमाण है उतना स्थितिसत्त्व शेष रहता है।

पृ.१०६ एकेन्द्रिय के स्थितिबंध का आश्रय करके अनुत्कृष्ट स्थितिविकल्प→

बादर एकेन्द्रिय जीव के द्वारा उत्कृष्ट स्थितिबंध-१ समय बांधने पर→ अन्य अनुत्कृष्ट

" " " " -२समय " " अपुनरुक्त "

उत्कृष्ट स्थितिबंध -३समय " →

इस प्रकार चार पांच समय आदि कम करते हुए सर्वजघन्य स्थिति तक उतारना चाहिए। एकेन्द्रियों में स्थितिबंध स्थान पल्योपम के असंख्यातवें भागमात्र ही है।

इसके पश्चात् क्षपक श्रेणी का आश्रय करके अन्तर्मुहूर्त मात्र स्थान कहते हैं→

एक जीव क्षपकश्रेणी पर आरूढ़ होकर अनिवृत्तिकरण क्षपक हुआ। पश्चात् अनिवृत्तिकरण काल के संख्यात बहुभागों के बीतने पर वह क्रमशः एक-एक अन्तर्मुहूर्त में असंज्ञी पंचेन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, द्वीन्द्रिय और एकेन्द्रिय जीव के स्थितिबन्ध के समान १००० सागर, १०० सागर, ५० सागर, २५ सागर और एक सागर प्रमाण स्थितिसत्त्व करता है, ये सभी स्थितिसत्त्व स्थान पुनरुक्त है। एकेन्द्रिय समान स्थितिसत्त्व में से

पृ.१०७ पल्योपम के असंख्यातवें भाग मात्र स्थितिकाण्डक को ग्रहण करके उसके विघटित करने तक अन्तर्मुहूर्त स्थान प्राप्त होते हैं वे पुनरुक्त हैं क्योंकि वे एकेन्द्रियों में प्राप्त स्थानों के अन्तर्गत हैं।

ग्रहण किये गये स्थितिकाण्डक की अन्तिम फालि के विघटित होने पर एकेन्द्रिय संबंधी स्थानों की अपेक्षा असंख्यातगुणा कम दूसरा अपुनरुक्त स्थान होता है। तत्पश्चात् द्वितीय समय में दूसरे स्थितिकाण्डक को ग्रहण करता है उस स्थितिकाण्डक के एक फालि के गलने पर एक समय कम होता है यह दूसरा अपुनरुक्त स्थान होता है।

द्वितीय " " " दो " " होते हैं यह द्वितीय " " "

तृतीय " " " तीन " " " " " तृतीय " " "

उत्कीरणकाल के द्विचरम समय तक निरन्तर स्थान पाये जाते हैं।

अंतिम फालि के विघटित हो जाने पर पल्योपम के संख्यातवें मात्र अन्तर करके अन्य अपुनरुक्त स्थान होता है।

अन्य स्थितिकाण्डक के प्रथम फालि के पतन होने पर उत्कीरण काल का एक समय कम होता है यह अन्य अपुनरुक्त निरन्तर स्थान होता है

" द्वितीय " " " " " " " " "

इस प्रकार एक समय कम उत्कीरण काल प्रमाण अपुनरुक्त निरन्तर स्थान पाये जाते हैं।

अंतिम फालि के पतन होने पर अन्तिम फालि प्रमाण स्थानों का अन्तर करके अपुनरुक्त स्थान उत्पन्न होता है।

इस प्रकार निरन्तर और सान्तर क्रम से स्थान क्षीणकषाय गुणस्थान के काल का

DATE

पृ.१०८ संख्यात बहुभाग बीतता है।
क्षीणकषाय जीव के अन्तिम स्थितिकाण्डक की अन्तिम फालि के विघटित होने पर क्षीणकषाय के अन्तिम समय तक क्षीणकषाय काल के संख्यातवें भागमात्र उदयक्षय से निरन्तर अपुनरुक्त स्थान पाए जाते हैं।
क्षपकश्रेणि में प्राप्त निरन्तर स्थान अन्तर्मुहूर्त प्रमाण होते हैं
उत्कीरणकाल-१ x संख्यात हजार = निरन्तर स्थान
सान्तर स्थान = संख्यात, क्षपकश्रेणि में संख्यात ही स्थितिकाण्डकों का घात होता है
प्रत्येक काण्डक की द्विचरम फालितक उत्कीरण काल का एक-एक समय ही गलता है इसलिए (प्रत्येक काण्डकों एक समय कम) उत्कीरण काल प्रमाण निरन्तर स्थान होते हैं। संख्यात हजार काण्डक होते हैं इसलिए संख्यात हजार गुणा किया।
स्थितिकाण्डक की अन्तिम फालि के विघटित होने पर काण्डकप्रमाण स्थिति युगपत् कम होती है इसलिए जितने काण्डक होते हैं उतने ही सान्तर स्थान होते हैं।
संख्यात पल्योपम प्रमाण स्थान यहाँ नहीं पाए जाते।
कर्मस्थिति - अप्राप्त स्थान = शेष अनुत्कृष्ट स्थान के विकल्प

	जघन्य	उत्कृष्ट
जघन्य स्थान में जीवों की संख्या →	एक →	१०८
क्षपक श्रेणि में प्राप्त सभी स्थानों में →	"	"
संज्ञी पंचे. मिथ्यादृष्टि जघन्य स्थिति में →	प्रतर के असंख्यातवें भाग प्रमाण	
" " उत्कृष्ट स्थितितक	" " " "	

अनन्तरोपनिधा
पृ.१०९ ज्ञानावरणीय का जघन्य स्थितिबंध होते समय सातावेदनीय का चतुःस्थान (गुड-खांड-शर्करा-अमृतसमान) त्रिस्थान (अमृत के बिना) द्विस्थान (गुड खांड) बन्ध हो सकता है उसीप्रकार असातावेदनीय का भी चतुःस्थान (नीम, कांजीर, विष, हलाहलसमान) त्रिस्थान और द्विस्थान बंध हो सकता है।

		जीवों की संख्या
ज्ञानावरण जघन्य स्थिति में, सातावेदनीय के चतुःस्थानबंधक, त्रिस्थानबंधक असातावेदनीय के द्विस्थान बंधक		स्तोक
द्वितीय स्थिति में	"	विशेष अधिक
तृतीय स्थिति में	"	विशेष अधिक
यवमध्यतक	"	" "
यवमध्य से आगे	"	विशेष हीन
सागरोपम शतपृथक्त्व स्थितितक	"	" "

विशेष का प्रमाण → पल्योपम के असंख्यातवें भाग से खण्डित एक भागप्रमाण

classmate

PAGE

DATE

		जीवों की संख्या
ज्ञानावरण की जघन्य स्थिति में, सातावेदनीय द्विस्थानबंधक / असातावेदनीयचतुःस्थानबंधक		स्तोक
द्वितीय स्थिति में	"	विशेष अधिक
तृतीय "	"	विशेष अधिक
सागरोपमशतपृथक्त्व स्थितितक	"	" "
इससे आगे की स्थिति में		विशेष हीन
साता व असाता वेदनीय की उत्कृष्ट स्थिति तक		" "

पृ.११० परम्परोपनिधा → साता के चतुस्थान त्रिस्थान और असाता के द्विस्थान त्रिस्थान बंधक
ज्ञानावरण की जघन्य स्थिति से पल्योपम के असंख्यातवे भाग मात्र स्थान जाकर → दुगुणी वृद्धि
यवमध्यतक " "
उसके आगे पल्योपम के असंख्यातवें भाग मात्र स्थान जाकर दुगुणे हीन
सागरोपमशतपृथक्त्वतक " "
साता के द्विस्थान और असाता के चतुस्थान बंधक
ज्ञानावरण की जघन्य स्थिति से पल्योपम के असंख्यातवे भागमात्र स्थान जाकर - दुगुणे
इसप्रकार सागरोपमशतपृथक्त्व तक दुगुणवृद्धि
इससे आगे पल्योपम के असंख्यातवें भाग जाकर दुगुणे हीन
साता व असातावेदनीय की उत्कृष्ट स्थिति तक " "

एक गुणहानि का प्रमाण → पल्योपम के असंख्यात वर्गमूल प्रमाण
नाना (जीव दुगुणवृद्धिहानिस्थानान्तर) गुणहानि — पल्योपम के प्रथम वर्गमूल के असंख्यातवें भागप्रमाण

जघन्यस्थानसंबंधी जीवों का भागहार → असंख्यात गुणहानि
द्वितीय " " " → " "
यवमध्य के जीवों का भागहार → कुछ कम तीन गुणहानि

पृ.१११

जीव	जीवों का प्रमाण	गुणाकार का प्रमाण
उत्कृष्ट स्थान	सबसे स्तोक	
जघन्य स्थान	असंख्यातगुणे	पल्योपम ÷ असंख्यात
यवमध्य	असंख्यातगुणे	नीचे की अन्योन्याभ्यस्त राशि
यवमध्य को छोड़कर नीचे के सब जीव	"	कुछ कम डेढ़ गुणहानियाँ
यवमध्य से लेकर नीचे के	विशेष अधिक	यवमध्य के जीवों से विशेष अधिक
यवमध्य के उपरिम जीव	विशेष अधिक	
सर्वजीव	विशेष अधिक	

DATE

समान शेष छह कर्मों के

पृ.112 ज्ञानावरणीय कर्म के उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट स्वामित्व की प्ररूपणा कहना चाहिए।
विशेष इतना → मोहनीय की उत्कृष्ट स्थिति → सत्तर कोडाकोडी सागरोपम प्रमाण
नाम व गोत्र की उत्कृष्ट स्थिति → बीस " "
मोहनीय के अनुत्कृष्ट स्थान — सं. पंचे. मिथ्यादृष्टि से सूक्ष्मसांपराय के अंतिम समयतक
नाम, गोत्र, वेदनीय के अनुत्कृष्ट स्थान → सं. पंचे, मिथ्यादृष्टि से अयोग केवली के अंतिम समय तक

113 से 116 आयुकर्म की कालकी अपेक्षा उत्कृष्टवेदना का स्वामी →
1) मनुष्य अथवा पंचेन्द्रिय तिर्यंच संज्ञी सम्यग्दृष्टि अथवा मिथ्यादृष्टि
सब पर्याप्तियों पर्याप्त, कर्मभूमि में या कर्मभूमिप्रतिभाग में उत्पन्न,
संख्यात वर्ष की आयुवाला, स्त्रीवेद, पुरुषवेद, अथवा नपुंसकवेद से संयुक्त
जलचर अथवा स्थलचर, साकार उपयोग से सहित, जागरूक, तत्प्रायोग्य
संक्लेश अथवा विशुद्धि से संयुक्त, उत्कृष्ट आबाधा के साथ देव व नारकियों
की उत्कृष्ट आयु को बाँधनेवालेके बांधने के प्रथम समय में आयुकर्म की वेदना
काल की अपेक्षा उत्कृष्ट होती है।
आयुकर्म की उत्कृष्ट वेदना काल → 33 सागर + पूर्वकोटि का त्रिभाग
देवों की उत्कृष्ट आयु का बंध संयत मनुष्य करता है।
नारकियों की उत्कृष्ट आयु का बंध मिथ्यादृष्टि, कर्मभूमिज मनुष्य, जलचर, स्थलचर संज्ञी पंचेन्द्रिय
कर्मभूमि, कर्मभूमि प्रतिभाग में उत्पन्न तिर्यंच मिथ्यादृष्टि करता है।
आयु की उत्कृष्ट आबाधा → पूर्वकोटि ÷ 3

आयुकर्म की अनुत्कृष्ट वेदना — भुज्यमान आयु, बध्यमान आयु
उत्कृष्ट वेदना → पूर्वकोटि का तृतीय भाग + 33 सागरोपम
1) अनुत्कृष्ट वेदना → " + 33सा. − 1 समय
2) " " " + 33सा − 2 समय
असंख्यात भागहानि
" " " + 33सा − $\frac{33सा}{जघन्य परीतासंख्यात}$ समाप्त
" " " + 33सा − $\frac{33सा}{उत्कृष्ट संख्यात}$ संख्यात भागहानि प्रारंभ
पृ. 117 " " " + 33सा − $\left(\frac{33सा}{2} - 1\right)$ अर्थात $\frac{33सा}{2}$ + 1 समय संख्यात भागहानि समाप्त
" " → " + $\frac{33सा}{2}$ संख्यात गुणहानि प्रारंभ
" " → " + $\frac{33सा}{जघन्य परीतासंख्यात}$ + 1 असंख्यात गुणहानि
" + 10 हजारवर्ष प्रमाण।

PAGE

classmate

तत्पश्चात् १०००० वर्षप्रमाण मनुष्यायु को गलाकर एक समय कम, दो समय कम इत्यादि क्रम से अधःस्थिति के गलने से भवसिद्धिक के अन्तिम समय तक ले जाना चाहिए

अनुत्कृष्ट स्थान विकल्प = (तेतीस सागरोपम-१) + $\frac{\text{पूर्वकोटि}}{3}$

आयु के उत्कृष्ट स्थान में — असंख्यात जीव
त्रसयोग्य सब स्थानों में — " "
एकेन्द्रिय योग्य सब स्थानों में — अनन्त जीव
क्षपकश्रेणि में ही पाये जानेवाले स्थानों में — संख्यात जीव

पृ.१९२ त्रसकायिक प्रायोग्य स्थानों के जीवों का भागहार → अनन्त
एकेन्द्रिय " " " " → अन्तर्मुहूर्त

अल्पबहुत्व	जीवों की संख्या का गुणकार
जघन्य स्थान में	सब से कम
उत्कृष्ट स्थान में	असंख्यात गुणे
अजघन्य अनुत्कृष्ट स्थानों में	अनन्तगुणे
अनुत्कृष्ट स्थानों में	विशेष अधिक (उपर्युक्त जीव + जघन्य स्थान के जीव
अजघन्य स्थानों में	विशेष अधिक (अनुत्कृष्ट जीव — जघन्य जीव) + उत्कृष्ट
सब स्थानों में	विशेष अधिक (अजघन्य जीव + जघन्य जीव)

पृ.१९५- ज्ञानावरणीय की काल अपेक्षा जघन्य वेदना का स्वामी → क्षीणकषाय के अन्तिम समयवर्ती छद्मस्थ

जघन्य वेदना → एक समय·

अजघन्य वेदना → जघन्य वेदना से भिन्न अजघन्य वेदना

1) " " → क्षीणकषाय के द्विचरम समय में दो समय प्रमाण

2) " " " त्रिचरम " " तीन " "

इसी प्रकार क्षीणकषाय काल के संख्यातवें भाग तक निरन्तर स्थान अपुनरुक्त

3) पश्चात् तदनन्तर स्थिति में → अन्तर्मुहूर्त अधिक स्थितियुक्त सान्तर स्थान क्यों कि, यहाँ अन्तिम स्थितिकाण्डक की अन्तिम फालि पायी जाती है।

यहाँ से आगे एक समय कम उत्कीरणकाल के बराबर निरन्तर स्थान होते हैं उसके बाद एक सान्तर स्थान उत्पन्न होता है। क्यों कि विवक्षित स्थितिकाण्डक की अन्तिम फालि का पतन होने पर एक साथ काण्डक आयाम प्रमाण स्थिति कम होती है। इस प्रकार अनिवृत्तिकरण के संख्यातवें भाग तक उतारना चाहिये।

DATE

यहाँ के अनिवृत्तिकरण के स्थितिसत्त्व से बादर एकेन्द्रिय पर्याप्त जीव के ज्ञानावरण का जघन्य स्थितिसत्त्व पल्योपम के असंख्यातवें भाग से विशेष अधिक है।

बादर एकेन्द्रिय पर्याप्त जघन्य स्थितिसत्त्व + 1 समय → दूसरा अपुनरुक्त स्थान

भागहार → जघन्य ध्रुवस्थिति $\frac{\text{जघन्यस्थिति}}{\text{जघन्यस्थिति}} = 1$ यह असंख्यात भागवृद्धि का स्थान है

बा.ए.प. जघन्य स्थिति + 2 समय = अपुनरुक्त स्थान $\frac{\text{जघन्यस्थिति}}{\frac{\text{जघन्य स्थिति}}{2}} = 2$ असंख्यात भागवृद्धि

बा.ए.प. जघन्यस्थिति + 3 समय = " " $\frac{\text{जघन्यस्थिति}}{\frac{\text{जघन्य स्थिति}}{3}} = 3$ " "

बा.ए.प. जघन्यस्थिति + 4 समय = " " भागहार = ज. स्थिति ÷ 4 = " "

इस प्रकार ध्रुवस्थिति में जितनी पल्योपम शलाकाएं प्राप्त होती हैं उतनी संख्या बढ़ाने पर भी असंख्यात भागवृद्धि ही होती है।

ध्रुवस्थिति ÷ पल्योपम = पल्योपम शलाकाएं

जैसे माना ध्रुवस्थिति 4096, पल्योपम 256, 4096 ÷ 256 = 16 पल्योपम शलाका

4096 + 16 = 4112 पल्योपम शलाका प्रमाण वृद्धि,

4112 + 1 = 4113 अन्य अपुनरुक्त स्थान, असंख्यात भागवृद्धि, भागहार = कुछ कम पल्योपम

ध्रुवस्थिति + पल्योपम शलाका × 2 = असंख्यात भागवृद्धियुक्त स्थान

4096 + (16 × 2) = 4128 ध्रुवस्थिति ÷ $\frac{\text{पल्योपम}}{2}$ = पल्योपम शलाका × 2

$4096 \div \frac{256}{2} = 32$

ध्रुवस्थिति + पल्योपम शलाका × पल्योपम प्रथम वर्गमूल = असंख्यात भागवृद्धियुक्त स्थान

4096 + (16 × 16) = 4096 + 256 = 4352

क्योंकि ध्रुवस्थिति ÷ पल्योपम प्रथम वर्गमूल = पल्योपम शलाका प्रमाण प्रथमवर्गमूल

4096 ÷ 16 = 256 (16 × 16)

इस प्रकार ध्रुवस्थिति में जघन्य परीतासंख्यात का भाग देने पर जो लब्ध आता है वहाँ तक की वृद्धि का प्रमाण असंख्यात भागवृद्धि ही है। इतने वृद्धिंगत स्थान बादर एकेन्द्रिय के स्थितिबन्धस्थान नहीं हैं।

बादर एकेन्द्रिय के स्थितिबन्धस्थान = पल्योपम ÷ आवली का असंख्यातवां भाग

वीचार स्थान अर्थात् बीच के स्थितिबन्धस्थान

बादर एकेन्द्रिय की उत्कृष्ट स्थिति के ऊपर एक समयादि की अधिकता से बन्ध नहीं पाया जाता क्योंकि एकेन्द्रिय का उत्कृष्ट स्थितिबंध - एक सागरोपम $\frac{3}{7}$ भाग है और द्वीन्द्रिय का जघन्य स्थितिबंध 25 सा. $\frac{3}{7}$ — पल्योपम का संख्यातवां भाग है

classmate

DATE

इसलिए स्थितिघात का आश्रय करके ऊपर के स्थानों की उत्पत्ति होती है। वह इस प्रकार →

पंचेन्द्रियादि पर्याय में से एकेन्द्रियों में उत्पत्ति होने पर, एकेन्द्रिय के योग्य स्थिति से अधिक स्थिति का घात होने लगता है। स्थितिघात करके एकेन्द्रिय की उत्कृष्ट स्थिति से एक समय अधिक स्थिति शेष रहने पर अन्य असंख्यात भागवृद्धि युक्त अजघन्य स्थान उत्पन्न होता है।

एकेन्द्रिय उत्कृष्ट स्थिति + 2 समय → अन्य अपुनरुक्त स्थान, असंख्यात भागवृद्धियुक्त

" " " + 3 समय → " " " " " "

पृ.124 " " " + (ध्रुवस्थिति ÷ जघन्य परीतासंख्यात) → स्थान " " →

उपर्युक्त स्थान + 1 समय = अन्य अपुनरुक्त स्थान " " "

इसका भागहार पूर्णांक में न होकर छेदरूप होता है उसका प्रमाण कहते हैं →

उपरिम विरलन → जघन्य परीतासंख्यात

देयराशि → बादर एकेन्द्रिय की ध्रुवस्थिति

लब्ध → ध्रुवस्थिति ÷ जघन्य परीतासंख्यात

इससे एक अधिक लब्ध चाहते हैं →

अधस्तन विरलन → उपर्युक्त लब्ध

देयराशि → " "

लब्ध → 1 अंक

उपरिम विरलन पर प्राप्त राशि में अधस्तन विरलन पर प्राप्त राशि को देकर समकरण करनेपर

प्रमाण	फल	इच्छा
अधस्तन विरलन + 1 स्थान जाकर	भागहार में 1 की हानि	उपरिम विरलन में कितनी हानि ?

$$\frac{\text{फल} \times \text{इच्छा}}{\text{प्रमाण}} = \text{लब्ध } \frac{\text{एक}}{\text{असंख्यात}}$$

उपरिम विरलन − हानिरूप अंक = विवक्षित भागहार

जघन्यपरीतासंख्यात − $\frac{1}{\text{असंख्यात}}$ = उत्कृष्ट संख्यात + एक रूप का असंख्यात बहुभाग

जब राशि में कोई छेद नहीं होता तब एक समझना $3 = \frac{3}{1}$

और जब अंश का अभाव हो जाता है तब छेदों का भी नाश होता है

$$\frac{3}{10} - \frac{6}{20} = \frac{3 \times 2}{10 \times 2} - \frac{6}{20} = \frac{6-6}{20} = \frac{0}{20} = 0$$

पृ. 125

बादर एकेंद्रिय ध्रुवस्थिति ÷ उपर्युक्त विवक्षित भागहार = ध्रुवस्थिति ÷ ज. परीतासंख्यात + 1

उपर्युक्त स्थान + 2 समय = अन्य अपुनरुक्त स्थान, यहाँ भी असंख्यात भागवृद्धि है।

" + 3 समय = " " " " "

DATE

इस प्रकार तब तक छेदभागहार होकर आता है जब तक कि बादर एकेन्द्रिय की ध्रुवस्थिति को जघन्य परीतासंख्यात से खंडित कर उसमें से एक खण्ड के ऊपर उसको ही उत्कृष्ट संख्यात से खण्डित करके उसमें से एक अंक कम एक खण्ड की वृद्धि नहीं हो जाती। तत्पश्चात् पूरे खण्डप्रमाण वृद्धि हो जाने पर समभागहार होता है। = जैसे जघन्य परीतासंख्यात १६ माना, उत्कृष्ट संख्यात १५, पृ. १२६

ध्रुवस्थिति ९६० मानी.

ध्रुवस्थिति ÷ ज.परीतासंख्यात

९६० ÷ १६ = ६० एक खंड, इसके ऊपर १, २, इत्यादि बढ़ाते हुए

उपर्युक्त एक खंड ÷ उत्कृष्ट संख्यात = एक खंड

६० ÷ १५ = ४ एक खंड इसमें एक कम अर्थात् ३ संख्या बढ़ने तक छेदभागहार होते हैं, पूर्ण एक खंडप्रमाण अर्थात् ४ बढ़ने पर

६० + ४ = ६४ समभागहार अर्थात् उत्कृष्ट संख्यात भागहार का प्रमाण होता है ९६० ÷ १५ = ६४

अधस्तन विरलन → उत्कृष्ट संख्यात १५ ६४ ६४ ६४ ६४ ६४ / १ १ १ १ १ --- १५ बार

देयराशि → बादर एकेन्द्रिय ध्रुवस्थिति ९६०

लब्ध → ध्रुवस्थिति ÷ उत्कृष्ट संख्यात = वृद्धि का प्रमाण ६४

प्रमाण राशि	फलराशि	इच्छाराशि
अधस्तन विरलन +१ में	१ की हानि	उपरिम विरलन में कितनी हानि
उत्कृष्ट संख्यात +१	१	जघन्यपरीतासंख्यात
१५+१ = १६	१	१६

$\frac{१६}{१६}$ = १ की हानि

जघन्यपरीतासंख्यात − हानिरूप अंक = विवक्षित समभागहार

१६ − १ = १५ उत्कृष्ट संख्यात समभागहार

यहाँ संख्यात भागवृद्धि का प्रारंभ और असंख्यात भागवृद्धि की समाप्ति हो जाती है।

इसके ऊपर अन्य जीव स्थितिघात को करता हुआ एक-एक समय अधिक स्थिति को लेकर स्थित हुआ। यहाँ भी संख्यात भागवृद्धि ही होती है। इस वृद्धि का छेदभागहार होता है। पृ.

अधस्तन विरलन → ऊपरके अधस्तन विरलन पर स्थित राशि ६४

देयराशि → वही राशि ६४

लब्ध → १

ऊपरके अंकपर स्थित राशि ६४ + १ = ६५ = विवक्षित वृद्धि का प्रमाण

classmate

DATE

भागहार में
पृ.१२६ तीन अंकों का प्रमाण लाते हैं →

प्रमाण राशि	फलराशि	इच्छाराशि
अधस्तन राशि + १ जाकर	१ की हानि	ऊपर की विरलन राशि में कितनी
६४ + १	१	१५ में ?

$\frac{१५}{६५}$ = हानि रूप अंक एक रूप का असंख्यातवाँ भाग

उत्कृष्ट संख्यात — हानिरूप अंक = विवक्षित छेदभागहार
$१५ - \frac{१५}{६५} = \frac{(१५ \times ६५) - १५}{६५} = \frac{१५ \times ६४}{६५} = \frac{९६०}{६५}$

एक रूप का असंख्यात बहुभाग + (उत्कृष्ट संख्यात − १) = छेदभागहार का प्रमाण
$\frac{५}{१३} + १४ = १४\frac{५}{१३}$

उपर्युक्त स्थान + २ = संख्यात भागवृद्धि का स्थान छेद भागहार
" " + ३ = " " " छेद भागहार
उपर्युक्त एक खण्ड ÷ (उत्कृष्ट संख्यात − १) = एक खण्ड, इसमें से एक कम एक खण्ड की वृद्धि नहीं हो जाती तबतक छेद भागहार होता है। सम्पूर्ण खण्डप्रमाण वृद्धि
$६४ \div (१५ - १) = ६४ \div १४ = ४\frac{८}{१४}$
चुकने पर सम भागहार होता है। उसको दिखाते हैं —
विरलन राशि → उत्कृष्ट संख्यात − १ $१५ - १ = १४$
देयराशि → ऊपर के विरलन पर स्थित राशि ६४
लब्ध → वृद्धि का प्रमाण $४\frac{८}{१४}$
$६४ + ४\frac{८}{१४} = ६८\frac{८}{१४}$ इस प्रकार समकरण करके हानिरूप अंक →

अधस्तन विरलन + १ जाकर	१ की हानि	उपरिम विरलन में कितनी हानि ?
१४ + १ = १५	१	१५ ? $\frac{१५}{१५} = १$ हानि

उपरिम विरलन — हानि रूप अंक = विवक्षित समभागहार उत्कृष्ट संख्यात − १
$१५ - १ = १४$
ध्रुवस्थिति ÷ उपर्युक्त भागहार = विवक्षित संख्यात भागवृद्धि का प्रमाण
$९६० \div १४ = ६८\frac{८}{१४}$

पृ.१२८ इस प्रकार छेदभागहार और सम भागहार के द्वारा स्थितिघात का आश्रय करके ध्रुवस्थिति भागहार दो अंक (जघन्य संख्यात) प्रमाण प्राप्त होने तक ले जाना चाहिए। विरलन राशि → २, देयराशि → ध्रुवस्थिति, लब्ध = ध्रुवस्थिति ÷ २ $\frac{४८०}{१}$ $\frac{४८०}{१}$
$९६० \div २ = ४८०$

पुनः दूसरा जीव स्थितिघात को करता हुआ उत्तरोत्तर एक-एक समय अधिक स्थिति के

साथ आया। वह संख्यात भागवृद्धि का अन्त्य स्थान होता है। इसका छेदभागहार होता है। ४८०+१ = ४८१ संख्यात भागवृद्धि।

अधस्तन विरलन → ऊपर के एक अंकपर प्राप्त राशि ४८०

देयराशि → " " " " " ४८०

लब्ध → १

ऊपरके एक अंक के प्रति प्राप्त राशि + अधस्तन विरलन प्राप्त राशि = वृद्धि का प्रमाण

४८० + १ = ४८१

इस प्रकार समकरण करनेपर

प्रमाण	फल	इच्छा
अधस्तन विरलन+१ में	१ की हानि	उपरिम विरलन में ?
४८०+१=४८१	१	2 ? $\frac{2}{४८१}$ = हानि रूप अंक

एक रूप का असंख्यातवाँ भाग

उपरिम विरलन − हानिरूप अंक = विवक्षित भागहार

$$2 - \frac{2}{४८१} = \frac{2 \times ४८१ - 2}{४८१} = \frac{९६२ - 2}{४८१} = \frac{९६०}{४८१} = १\frac{४७९}{४८१}$$

भागहार का प्रमाण → एक पूर्ण रूप और एक रूप का असंख्यात बहुभाग

बादर ध्रुवस्थिति ÷ उपर्युक्त भागहार = वृद्धि का प्रमाण

$९६० \div \frac{९६०}{४८१} = ९६० \times \frac{४८१}{९६०} = ४८१$ संख्यातभागवृद्धि का अपुनरुक्त स्थान

उपर्युक्त स्थान + 2 समय = अन्त्य संख्यात भागवृद्धि का स्थान पृ. १२

४८० + 2 = ४८2 " " " "

इसका भी छेदभागहार होता है।

जब तक बादर एकेन्द्रिय की ध्रुवस्थिति को दो रूपों से खण्डित करके उसमें से एक खण्ड को एक कम करके जो प्राप्त हो उतनी वृद्धि नहीं हो जाती तब तक छेदभागहार होता है।

बादर एकेंद्रिय ध्रुवस्थिति ÷ 2 = एक खण्ड,

पृ.१२८ ९६० ÷ 2 = ४८० इसमें एक कम ४७९ प्रमाण वृद्धि होने तक छेदभागहार होता है। पूर्ण लब्ध प्रमाण वृद्धि के होने पर समभागहार होता है।

४८० वृद्धि होनेपर ४८०+४८० = ९६० वृद्धि का प्रमाण

विरलन → १, देयराशि → ध्रुवस्थिति ÷ 2 (४८०) लब्ध = ध्रुवस्थिति ÷ 2 (४८०)

अधस्तन विरलन +१ में	१ की हानि	उपरिम विरलन में कितनी हानि
१+१ = 2	१	2 ? $\frac{2}{2}$ = १ हानि

उपरिम विरलन − हानिरूप अंक = विवक्षित भागहार

2 − १ = १ विवक्षित भागहार

बादर एकेन्द्रिय ध्रुवस्थिति ÷ विवक्षित भागहार = वृद्धि का प्रमाण ध्रुवस्थितिप्रमाण

९६० ÷ १ = ९६० , ९६० + ९६० = १९२० संख्यात गुणवृद्धि का प्रारंभ

बादर एकेन्द्रिय ध्रुवस्थिति × 2 = विवक्षित स्थान

९६० × 2 = १९२० संख्यात गुणवृद्धि का प्रथम स्थान

इसके ऊपर एक-एक समय की वृद्धि होने पर छेद गुणकार होता है।

दो गुणकार के ऊपर जितनी वृद्धि होती है उसको प्रक्षेप कहते हैं। उस प्रक्षेप का प्रमाण कहते हैं।

प्रमाण	फल	इच्छा
ध्रुवस्थिति प्रमाण वृद्धि के होने पर	एक गुणकार	१ समय की वृद्धि में क्या प्राप्त होगा।

$\frac{1}{\text{ध्रुवस्थिति}}$ – प्रक्षेप का प्रमाण $\frac{1}{4}$

यहाँ ध्रुवस्थिति की संदृष्टि ४ अंक है।

2 गुणकार + प्रक्षेप अंक = विवक्षित गुणकार

$2 + \frac{1}{4} = \frac{2 \times 4 + 1}{4} = \frac{8+1}{4} = \frac{9}{4}$

बादर ध्रुवस्थिति × विवक्षित गुणकार = दूनी वृद्धि + १

$4 \times \frac{9}{4} = 9 \quad \{(4 \times 2) + 1\}$

(बादर ध्रुवस्थिति × 2) + 2 = अन्य संख्यात गुणवृद्धि का स्थान , छेदगुणकार $\frac{10}{4} = \frac{5}{2}$

$(4 \times 2) + 2 = 10$ " " "

पृ. १२९ $4 \times \frac{5}{2} = 10$ दुगुण वृद्धि + 2 समय

इस क्रम से छेदगुणकार होकर तब तक जाता है जब तक कि अन्य एक अंक से कम ध्रुव स्थिति प्रमाण वृद्धि नहीं हो जाती।

$4 \times 3 = 12$ तिगुणी वृद्धि

प्रमाण	फल	इच्छा
ध्रुवस्थिति प्रमाण समयों के	एक गुणकार शलाका	ध्रुवस्थिति में कितनी गुणकारशलाका
४	१	४ ? $\frac{4}{4} = 1$ गुणकार शलाका

2 गुणकार + १ गुणकारशलाका = 3 गुणकार

ध्रुवस्थिति × 3 गुणकार = तिगुणी वृद्धि

$4 \times 3 = 12$

तिगुणी वृद्धि स्थान + १ समय = अन्य संख्यात गुणवृद्धि का स्थान, इसका छेदगुणकार

छेदगुणकार का प्रमाण →

ध्रुवस्थिति प्रमाण समयों का	१ गुणकार	१ समय का कितना ?
४	१	१ ? $\frac{1}{4}$ = प्रक्षेप गुणकार

एक रूपका असंख्यातवाँ भाग प्रक्षेप का प्रमाण है।

$३ + \frac{१}{४} = \frac{१२+१}{४} = \frac{१३}{४}$ विवक्षित गुणकार

ध्रुवस्थिति × विवक्षित गुणकार = तिगुणी वृद्धि + १ समय

$४ \times \frac{१३}{४} = १३$ $(४\times3)+१ = १३$

तिगुणी वृद्धि + 2 समय = अन्य संख्यात गुणवृद्धि युक्त स्थान, इसका छेदगुणकार

$४\times३ + 2 = १४$

पूर्व का प्रक्षेप × 2 $= \frac{१}{४}\times2 = \frac{2}{४} = \frac{१}{2}$

तीन समय अधिक बढ़ने पर छेदगुणकार होता है।

पूर्व अंश × 3 $= \frac{१}{४}\times3 = \frac{3}{४}$

पृ.१३० इस प्रकार छेदगुणकार होकर तब तक जाता है जब तक कि पूर्व का अंश एक कम ध्रुवस्थिति गुणित होकर तीन रूपों में प्रक्षिप्त नहीं हो जाता।

3 + पूर्व अंश × ध्रुवस्थिति = गुणकार ४ अंक

$3 + \frac{१}{४}\times४ = 3+१ = ४$ गुणकार का प्रमाण

ध्रुवस्थिति × ४ = चौगुणी वृद्धि

$४\times४ = १६$

इस प्रकार छेदगुणकार और समगुणकार के क्रम से बन्ध का और सत्व का आश्रय करके संज्ञी पंचेन्द्रिय जीव की ध्रुवस्थिति तक ले जाना चाहिये। उसका प्रमाण संदृष्टि में २८ है। $४\times७ = २८$

संज्ञी पंचेन्द्रिय ध्रुवस्थिति + १ = अन्य अपुनरुक्त स्थान

$२८+१ = २९$

गुणकार का प्रमाण $७ + \frac{१}{४} = \frac{२९}{४}$

ध्रुवस्थिति × विवक्षित गुणकार = विवक्षित स्थान, संज्ञी पंचे. ध्रुवस्थिति + १ समय

$४ \times \frac{२९}{४} = २९$

इस प्रकार छेदगुणकार और समगुणकार स्वरूप से बादर ध्रुवस्थिति में एक कम उत्कृष्ट गुणकार शलाकाओं के प्रविष्ट होने तक ले जाना चाहिये।

$४\times५७ = २२८$ उत्कृष्ट गुणकार का प्रमाण ५८ है उसमें १ कम किया तो ५७ गुणकार से गुणा किया।

उपर्युक्त स्थान + १ = अन्य अपुनरुक्त स्थान

$२२८ + १ = २२९$ " " "

पृ. १३१ पूर्व गुणकार + $\frac{१}{४}$ प्रक्षेप गुणकार = विवक्षित गुणकार

$५७ + \frac{१}{४} = ५७\frac{१}{४} = \frac{२२९}{४}$

बादर ध्रुवस्थिति × विवक्षित गुणकार = साम्प्रतिक स्थान $४\times\frac{२२९}{४} = २२९$

DATE

उपर्युक्त स्थान + 2 समय = अन्य अपुनरुक्त स्थान

228 + 2 = 230 " " "

यहाँपर प्रक्षेप गुणकार $\frac{1}{4}\times 2 = \frac{2}{4} = \frac{1}{2}$

पूर्वोक्त गुणकार 57 + प्रक्षेप $\frac{1}{2}$ = $57\frac{1}{2}$ विवक्षित गुणकार

ध्रुवस्थिति x विवक्षित गुणकार = दो समय अधिक वृद्धि का स्थान

$4 \times \frac{115}{2} = 230$ " " " "

उपर्युक्त स्थान + 3 समय = अन्य अपुनरुक्त स्थान

228 + 3 = 231 " " "

पूर्वोक्त अंश x 3 = $\frac{1}{4}\times 3$ प्रक्षेप गुणकार $\frac{3}{4}$

पूर्वोक्त गुणकार 57 + प्रक्षेप $\frac{3}{4}$ = $57\frac{3}{4}$ विवक्षित गुणकार

बादर ध्रुवस्थिति x विवक्षित गुणकार = तीन समय अधिक वृद्धि का स्थान

$4 \times \frac{231}{4} = 231$ " " " " "

इस प्रकार पूर्वोक्त अंश का गुणकार एक कम ध्रुवस्थिति के होने तक छेद गुणकार होकर जाता है। पश्चात् एक समय अधिक बढ़कर बन्ध होने पर सम गुणकार होता है। उसका प्रमाण 58 है।

ध्रुवस्थिति x उत्कृष्ट गुणकार = संख्यात गुणवृद्धि का अन्तिम स्थान

4 x 58 = 232 " " " "

इस प्रकार बादर एकेन्द्रिय जीव की ध्रुवस्थिति का आश्रय करके तीन वृद्धियों के द्वारा ज्ञानावरणीय की अजघन्य स्थिति के स्वामित्व की प्ररूपणा की है।

पृ. 132 परन्तु जघन्य स्थिति 1 समय अन्तर्मुहूर्त, उत्कृष्ट स्थिति 30 कोडाकोडी सागरोपम प्रमाण जघन्य स्थिति से उत्कृष्ट स्थिति असंख्यात गुणी है इसलिए जघन्य स्थिति का आश्रय करके संख्यात गुणवृद्धि और असंख्यात गुणवृद्धि ये दो ही वृद्धियाँ होती हैं। 30 कोडाकोडी सागरोपम — संख्यात पल्योपम = ज्ञानावरणीय के अजघन्य काल के स्थानभेद

ज्ञानावरणीवके समान दर्शनावरणीय और अन्तराय कर्मों की जघन्य और अजघन्य स्थिति के स्वामित्व का कथन जानना।

पृ. 133 वेदनीय की काल अपेक्षा जघन्य वेदना अयोग केवली के अन्तिम समय में होती है। जघन्य कालवेदना → 1 समय

वेदनीय की अजघन्य कालवेदना → जघन्य से भिन्न वेदना अजघन्य कालवेदना है।

1) अयोग केवली के अन्तिम समय से प्रथम समय तक निरन्तर स्थान → एक-एक समय अधिक

2) सयोग केवली के अन्तिम समय में सान्तर स्थान → अन्तर्मुहूर्त का अंतर

3 उसके नीचे एक कम उत्कीरण कालप्रमाण निरन्तर स्थान

DATE

३) फिर एक बार सान्तर स्थान क्योंकि अन्तर्मुहूर्त प्रमाण स्थितिकांडक घात की अंतिम फालि का पतन होने पर एक साथ अन्तर्मुहूर्त प्रमाण स्थिति कम होती है।

इस प्रकार लोकपूरण समुद्घात घात तक सान्तर निरन्तर स्थान उत्पन्न करना।

५) प्रतर समुद्घातगत केवली में अन्य अपुनरुक्त सान्तर स्थान → पूर्व से असंख्यात गुणा

पृ.१३४ ६) कपाट " " " " " " " " "

७) दण्ड " " " " " " " " "

८) दण्ड समुद्घात के अभिमुख " " " " " " " "

९) यहाँ से नीचे क्षीणकषाय के अन्तिम समय तक निरन्तर स्थान होते हैं, क्योंकि इस बीच में स्थितिकाण्डक का अभाव है।

क्षीणकषाय के अन्तिम समय के नीचे निरन्तर और सान्तर क्रम से ज्ञानावरणीय के विधान के अनुसार अजघन्य स्थानों की प्ररूपणा करना चाहिए।

वेदनीय के समान आयु, नाम, गोत्र की जघन्य एवं अजघन्य स्वामित्व का कथन है।

आयु कर्म के अजघन्य प्ररूपणा में कुछ विशेषता →

अयोगकेवली के द्विचरम समय में — प्रथम अजघन्य वेदना – दो समय

" त्रिचरम " द्वितीय " " तीन समय

" चतुश्चरम " तृतीय " " चार समय

पृ.१३५ यहाँ 2x2=४ दुगुणी वृद्धि है – यहाँ से संख्यात गुणवृद्धि प्रारंभ होकर उत्कृष्ट संख्यात से गुणा होने तक पायी जाती है।

इसके ऊपर एक समय की वृद्धि होने पर संख्यात गुणवृद्धि ही होती है

गुणाकार → उत्कृष्ट संख्यात + $\frac{1}{2}$

उनसे अनन्तर अधस्तन समय में असंख्यात गुणवृद्धि होती है। गुणाकार → जघन्य परीतासंख्यात

इसके आगे एक समय अधिक छह मास स्थिति तक असंख्यात गुणवृद्धि के द्वारा स्थान उत्पन्न करना चाहिये।

पश्चात् आयुबन्ध से होकर स्थित सर्वार्थसिद्धिस्थ देव की एक समय अधिक छह मास प्रमाण आयु शेष रहती है उसे ग्रहण करके एक-एक समय अधिक क्रम से सर्वार्थसिद्धि के प्रथम समय तक ले जाना चाहिये।

पुन: तैंतीस सागरोपम प्रमाण आयु बांधकर मनुष्य भव के अंतिम समय में स्थित संयत के अन्य अपुनरुक्त स्थान होता है।

इसके नीचे पूर्वकोटि त्रिभाग के प्रथम समय में स्थित संयत तक असंख्यात गुणवृद्धि के द्वारा उतारना चाहिए।

DATE

आयुकर्म के अजघन्य स्थान भेद → 33 सागरोपम + (पूर्वकोटि का त्रिभाग − १ समय)

पृ.१३६ मोहनीय की जघन्य कालवेदना → सूक्ष्मसाम्परायिक गुणस्थान के अन्तिम समय में स्थित जीव के होती है।

अजघन्य वेदना की प्ररूपणा ज्ञानावरणीय के अजघन्य वेदना के समान जानना।

११३७-१३९

जघन्य उत्कृष्ट पद में अल्पबहुत्व

कर्मों का नाम	अल्पबहुत्व	गुणकार का प्रमाण
१ आठों कर्मों की जघन्य वेदना	१ समय	
२ आयु कर्म की उत्कृष्ट "	असंख्यातगुणी	33 सागरोपम + $\frac{\text{पूर्वकोटि}}{3}$
3 नामगोत्र " "	संख्यातगुणी	संख्यात समय
४ ज्ञाना. दर्शना. वेदनीय अंतराय " "	विशेष अधिक	$\frac{1}{2}$ भाग अधिक
5) मोहनीय कर्म की उत्कृष्ट "	संख्यातगुणी	$2+\frac{1}{3}=\frac{7}{3}$

पृ. 205 सूक्ष्म एकेन्द्रिय अपर्याप्तक के संक्लेशविशुद्धिस्थान सबसे स्तोक हैं।
पृ. 290 उनसे बादर एकेन्द्रिय अपर्याप्तकके संक्लेश विशुद्धिस्थान असंख्यातगुणे हैं।

सू.ए. अपर्याप्तक के स्थितिबन्ध स्थानों से बा.ए. अपर्याप्तक के स्थितिबन्धस्थान संख्यातगुणे हैं परंतु उन स्थितिबन्ध को कारणभूत संक्लेशविशुद्धि स्थान असंख्यात गुणे हैं क्योंकि सब स्थितियों के कारणभूत "एक समय अधिक" समान नहीं है जघन्य स्थिति को कारणभूत संक्लेश स्थान कम है, द्वितीय स्थिति को कारणभूत संक्लेशस्थान विशेष अधिक है, इस प्रकार उत्कृष्ट स्थितितक विशेष अधिक-विशेष अधिक हैं।
इसके विपरीत उत्कृष्ट स्थिति को कारणभूत विशुद्धि स्थान सब से कम है, एक समय कम उत्कृष्ट स्थिति को कारणभूत विशुद्धि स्थान विशेष अधिक है, इस प्रकार जघन्य स्थितितक विशेषअधिक-विशेष अधिक हैं।

सूक्ष्म एकेन्द्रिय संबंधी स्थितिबंधस्थान बादर एके. अपर्याप्तक के स्थितिबंधस्थानों के बीच में पाये जाते हैं, क्योंकि सूक्ष्म एकेन्द्रिय के ज्यादा विशुद्धि भी नहीं पायी जाती इसलिए नीचे के स्थितिबंधस्थान नहीं है, ज्यादा संक्लेश भी नहीं पाया जाता इसलिए ऊपरके स्थितिबंधस्थान नहीं होते केवल बीच के ही पाये जाते हैं।

	बादर एकेन्द्रिय अपर्याप्तक के स्थितिबंध स्थान		सूक्ष्म एके. अपर्याप्तक स्थितिबंधस्थान संबंधी अध्यवसानपुंज
चतुर्थ खंड	सोलहवीं गुणहानि संबंधी अध्यवसानपुंज	3276800	
	पंद्रहवी गुणहानि " "	1638400	
	चौदहवी " " "	819200	
	तेरहवी " " "	409600	
तृतीय खंड	बारहवी " " "	204800	
	ग्यारहवी " " "	102400	
	दसवी " " "	51200	
	नववी " " "	25600	द्वितीय गुणहानि 25600
द्वितीय खंड	आठवी " " "	12800	प्रथम गुणहानि 12800
	सातवी " " "	6400	
	छठी " " "	3200	
	पाँचवी " " "	1600	
प्रथम खंड	चौथी " " "	800	
	तिसरी " " "	400	
	दुसरी " " "	200	
	प्रथम " " "	100	

classmate

सूक्ष्म एकेन्द्रिय अपर्याप्तक की विशुद्धि से बादर एकेन्द्रिय अपर्याप्तक की विशुद्धि अनन्तगुणी पायी जाती है इसलिए सूक्ष्म एके. अपर्याप्तक के स्थितिबन्धों से नीचे के स्थितिबंधस्थान संख्यात गुणे पाये जाते हैं।
सूक्ष्म एके. अपर्याप्तक के उत्कृष्ट संक्लेश से बादर एके. अपर्याप्तक का उत्कृष्ट संक्लेश अनन्तगुणा पाया जाता है इसलिए ऊपर के स्थितिबन्ध स्थान संख्यात गुणे हैं।

अंकसंदृष्टि से बादर एकेन्द्रिय अपर्याप्तक के अध्यवसानस्थानों की नाना गुणहानियाँ 16 मानी, सूक्ष्म एकेन्द्रिय अपर्याप्तक की नाना गुणहानि 2 मानी प्रथम गुणहानि की अपेक्षा द्वितीयादि गुणहानियों के समस्त परिणाम दूने-दूने होते हैं।

प्रथम गुणहानि से द्वितीय गुणहानि के समस्त परिणाम दुगुणे 100×2=200
" " " तृतीय " " " चौगुणे 100×4=400
" " " चतुर्थ " " " आठगुणे 100×8=800
" " से-जघन्य परीतासंख्यात के अर्धच्छेदों के बराबर गुणहानियाँ आगे जाकर स्थित गुणहानि के परिणाम } जघन्य परीतासंख्यात गुणे 100×16=1600
जिस राशि के जितने अर्धच्छेद होते हैं उतनी बार दो रखकर परस्पर गुणा करने से वही राशि आती है। प्रथम गुणहानि के समस्त परिणाम को जघन्य परीतासंख्यात के अर्धच्छेद प्रमाण बार दूना करने से जघन्य परीतासंख्यात का प्रमाण आता है। जघन्य परीतासंख्यात 16 माना उसके अर्धच्छेद 4
4 गुणहानि आगे जाने पर प्रथम गुणहानि का द्रव्य 16 गुणा हुआ
सूक्ष्म एकेन्द्रिय अपर्याप्त के संक्लेश विशुद्धिस्थानों की अपेक्षा बादर एकेन्द्रिय अपर्याप्तक के संक्लेश विशुद्धिस्थान असंख्यात गुणे हैं उसको सिद्ध करते हैं→

विरलन राशि → बादर एकेन्द्रिय अपर्याप्त नाना गुणहानि शलाका ÷ जघन्य परीतासंख्यात के अर्धच्छेद 16÷4=4
देयराशि → नाना गुणहानि शलाका 16
लब्ध → जघन्य परीतासंख्यात के अर्धच्छेद → 4 $\frac{4}{1}$ $\frac{4}{1}$ $\frac{4}{1}$ $\frac{4}{1}$

जघन्य परीतासंख्यात के अन्तिम अर्धच्छेद प्रमाण गुणहानियों का समस्त संक्लेश विशुद्धस्थान पुंज एक कम विरलन राशि से गुणित जघन्य परीतासंख्यात के अर्धच्छेदों के बराबर नीचे की सब गुणहानियों के समस्त अध्यवसान पुंज से असंख्यात गुणा है, यहाँ गुणकार उत्कृष्ट संख्यात से विशेष अधिक है।
अन्तिम अर्धच्छेदप्रमाण (अन्तिम 4) गुणहानियाँ
16वी 3276800
15वी 1638400
14वी 819200
13वी 409600
6144000

DATE

पृ. 295

विरलन-1 X जघन्य परीतासंख्यात अर्धच्छेद = अधस्तन गुणहानियाँ

पृ. 298 $8-1 \times 4 = 3 \times 4 = 12$ गुणहानियाँ

प्रथम 12 गुणहानियों का द्रव्य = (अंतधन x गुणाकार) – आदिधन

(204800 X 2) – 100

409600 – 100 = 409500

अन्तिम 4 गुणहानियों का द्रव्य = 6144000

प्रथम 12 " " = 409500

प्रथम 12 गुणहानियों का द्रव्य X उत्कृष्ट संख्यात + कुछ = अंतिम चार गुणहानि का द्रव्य

$409500 \times 15\frac{1}{273} = 6144000$

प्रथम अर्धच्छेद के बराबर गुणहानियों का अध्यवसानपुंज X जघन्य परीतासंख्यात = द्वितीय अर्धच्छेद बराबर गुणहानियों का "

	प्रथम 4 गुणहानि		द्वितीय चार गुणहानि
प्र. गु	100 X 16	= 1600	पाँचवी "
द्वि. गु	200 X 16	= 3200	छठी "
तृ. गु	400 X 16	= 6400	सातवी
चौ. गु	800 X 16	= 12800	आठवी
	1500 X 16	= 24000	

प्रथम अर्धच्छेद बराबर गुणहानियों का द्रव्य X जघन्य परीतासंख्यात^2 = तृतीय अर्धच्छेद प्रमाण गुणहानियों का द्रव्य

प्र. गु	100×16^2	$= 100 \times 256$	= 25600	वीं
द्वि. गु	200×16^2	$= 200 \times 256$	= 51200	दसवी
तृ. गु	400×16^2	$= 400 \times 256$	= 102400	ग्यारहवी
च. गु	800×16^2	$= 800 \times 256$	= 204800	बारहवी
		1500×256	= 384000	

द्वितीय अर्धच्छेद बराबर गुणहानि द्रव्य X जघन्य परीतासंख्यात = तृतीय अर्धच्छेदप्रमाण गुणहानि द्रव्य

पाँ. गु	1600	X 16	= 25600	नववी गु.
छठी गु	3200	X 16	= 51200	दसवी गु
सातवी	6400	X 16	= 102400	ग्यारहवी गु
आठवी	12800	X 16	= 204800	बारहवी गु.
	24000	X 16	384000	

DATE

पृ. 295

अधस्तन दो खण्ड संबंधी गुणहानि द्रव्य × उत्कृष्ट संख्यात + $\frac{1}{\text{जघन्य परीतासं}+1}$ = तृतीय खण्ड संबंधी गुणहानि समस्त द्रव्य

$(1500+24000) \times 15\frac{1}{17} = 25500 \times \frac{256}{17} = 384000$

$\frac{\text{जघन्य परीतासंख्यात}^2}{\text{जघन्य परीतासंख्यात}+1}$ = उत्कृष्ट संख्यात + $\frac{1}{\text{जघन्य परीतासंख्यात}+1}$

$\frac{256}{16+1} = \frac{256}{17} = 15\frac{1}{17}$

प्रथम खण्ड संबंधी सब गुणहानि द्रव्य × जघन्य परीतासंख्यात^3 = चतुर्थ खण्ड सम्बन्धी गुणहानि समस्त द्रव्य

प्र. गु.	100×16^3	$= 100 \times 4096$	$= 409600$	तेरहवी गु.
द्वि. गु.	200×16^3	$= 200 \times 4096$	$= 819200$	चौदहवी गु.
तृ. गु.	400×16^3	$= 400 \times 4096$	$= 1638400$	पंद्रहवी गु.
चौ. गु.	800×16^3	$= 800 \times 4096$	$= 3276800$	सोलहवी गु.
	1500×16^3	$= 1500 \times 4096$	$= 6144000$	

द्वितीय खण्ड संबंधी गुणहानि सर्वद्रव्य × जघन्य परीतासंख्यात^2 = चतुर्थ खण्ड संबंधी गुणहानि समस्त द्रव्य

$24000 \times 16^2 = 24000 \times 256 = 6144000$

तृतीय खण्ड संबंधी गुणहानि सर्वद्रव्य × जघन्य परीतासंख्यात = चतुर्थ खण्ड संबंधी गुणहानि समस्त द्रव्य

$384000 \times 16 = 6144000$ " " "

अधस्तन तीन खंड संबंधी समस्त गुणहानि द्रव्य × उत्कृष्ट संख्यात + $\frac{1}{\text{जघन्य परीतासंख्यात}^2+\text{ज.प.}+1}$

= चतुर्थ खण्ड सम्बन्धी समस्त गुणहानि द्रव्य

$(1500+24000+384000) \times 15\frac{1}{256+16+1} = 409500 \times 15\frac{1}{273} = 6144000$

$\frac{\text{जघन्य परीतासंख्यात}^3}{\text{ज. परीतासंख्यात}^2+\text{ज. परीतासंख्यात}+1}$ = उत्कृष्ट संख्यात + $\frac{1}{\text{ज. परी}^2+\text{ज.प.}+1}$

$\frac{4096}{256+16+1} = 15\frac{1}{256+16+1} = \frac{4096}{273} = 15\frac{1}{273}$

इतना गुणकार कैसे होता है उसका स्पष्टीकरण →

विरलन राशि → जघन्य परीतासंख्यात^2 २५६

देयराशि → जघन्य परीतासंख्यात^3 ४०९६ ४०९६ ÷ २५६ = १६

लब्धराशि → जघन्य परीतासंख्यात १६

$\frac{१६}{१}$ $\frac{१६}{१}$ $\frac{१६}{१}$ $\frac{१६}{१}$ $\frac{१६}{१}$ $\frac{१६}{१}$ $\frac{१६}{१}$ - - - - २५६ बार

विरलित अंकों में से एक-एक अंक ग्रहण करके मिलानेपर २५६ अर्थात जघन्य परीतासंख्यात का वर्ग होता है। शेष उत्कृष्ट संख्यात २५६ बार रहता है। जघन्य परीतासंख्यात का विरलन कर उपरिम जघन्य परीतासंख्यात के वर्गको देनेपर प्रत्येक अंक के प्रति जघन्य परीतासंख्यात आता है।

विरलन – ज.प. १६

देयराशि – ज.प^2 २५६

लब्ध → ज.प. १६ $\frac{१६}{१}$ $\frac{१६}{१}$ $\frac{१६}{१}$ $\frac{१६}{१}$ $\frac{१६}{१}$ - - - - १६ बार

प्रत्येक अंकपर स्थित राशिमें से एक-एक अंक ग्रहण करके मिलानेपर ज.परीतासंख्यात (१६) उत्पन्न होता है।

पुन: उनमें से (१६ में से) एक अंकको कम कर पास में विरलित एक रूप के प्रति देने पर उत्कृष्ट संख्यात प्राप्त होता है।

सब विरलन अंकों पर उत्कृष्ट संख्यात शेष रहता है।

सर्व विरलन → ज.परीतासंख्यात का वर्ग + जघन्य परीतासंख्यात + एक = २५६+१६+१ = २७३ कम किये गये एक अंक को उपर्युक्त सर्व विरलन राशि से खण्डित कर उनमें से एक-एक खण्डको प्रत्येक अंक के प्रति $\frac{१}{२७३}$ देने पर एक रूपके असंख्यातवें भागसे अधिक उत्कृष्ट संख्यात गुणकार होता है।

प्रथम खण्डके परिणाम × {(जघन्य परीतासंख्यात)^2}^{2} = पंचम खण्ड के परिणाम

१५०० × १६^4 = १५०० × ६५५३६ = ९८३०४००० पृ. २१

इसी प्रकार शेष खण्डों के भी गुणकार का कथन करना चाहिए।

चार खण्डों के समस्त परिणाम × उत्कृष्ट संख्यात $+ \frac{१}{\text{ज.प}^3 + \text{ज.प}^2 + \text{ज.प} + १}$ = पंचम खंड के सब परिणाम

(१५०० + २४००० + ३८४००० + ६१४४०००) × १५ $\frac{१}{४०९६+२५६+१६+१}$ =

६५५३५०० × १५ $\frac{१}{४३६९}$ = ९८३०४००० पंचम खंड के सब परिणाम

classmate

DATE

$$\frac{(\text{जघन्य परीतासंख्यात}^2)^2}{\text{ज.प}^3 + \text{ज.प}^2 + \text{ज.प.} + 1} = \text{उत्कृष्ट संख्यात} + \frac{1}{\text{ज.प}^3 + \text{ज.प}^2 + \text{ज.प.} + 1}$$

$$\frac{६५५३६}{४०९६ + २५६ + १६ + १} = \frac{६५५३६}{४३६९} = १५\frac{१}{४३६९}$$

यहाँपर भी पहले के ही समान कारण बतलाना चाहिए
इसी प्रकार आगे के सब खण्डों में एक अंक के असंख्यातवें भाग से अधिक उत्कृष्ट संख्यात प्रमाण गुणकार जानना चाहिए।
इसलिए अधस्तन सब खण्डों के अध्यवसानस्थानों की अपेक्षा बादर एकेन्द्रिय अपर्याप्तक के अन्तिम खण्डसम्बन्धी अध्यवसानस्थान असंख्यातगुणे हैं।
उत्कृष्ट संख्यात का अतिक्रमण करने से इस गुणकार को असंख्यात गुणकार कहा है।
बा. एके. अपर्याप्त स्थितिबन्धस्थानों के असंख्यात बहुभागमात्र स्थानों के संक्लेश विशुद्धि स्थानों की अपेक्षा यदि ऊपर के असंख्यातवें भागमात्र स्थानों के संक्लेश विशुद्धि स्थान असंख्यात गुणे होते हैं तो बा. एके. अपर्याप्त के संख्यातवें भागमात्र सू. एके. अपर्याप्तक के स्थितिबन्धस्थानों में पाये जानेवाले संक्लेशविशुद्धि स्थानों से बा. एके. अपर्याप्तक के समस्त संक्लेश विशुद्धिस्थान निश्चय से असंख्यात गुणे होते हैं ऐसा सिद्ध करना चाहिए।

पृ. २९८

अन्य प्रकार से गुणकार का कथन करते हैं। वह इस प्रकार →
प्रथम गुणहानि द्रव्य × सू. एके. अपर्याप्त जघन्यस्थान से नीचे की गुणहानि की अन्योन्याभ्यस्त राशि = सूक्ष्म एके. अपर्याप्त की प्रथम गुणहानि का द्रव्य

१०० × १२८ = १२८०० " " " " "

सूक्ष्म एकेन्द्रिय जघन्य स्थान से नीचे की गुणहानियाँ ७ मानी है इसलिए नीचे की अन्योन्याभ्यस्त राशि = २×२×२×२×२×२×२ = १२८

सूक्ष्म एके. अपर्याप्त नाना गुणहानिशलाका विरलन कर, दूना कर परस्पर गुणित करके उसमें से एक कम करना $\frac{2}{1}\frac{2}{1}$ = ४, ४-१ = ३
सूक्ष्म एकेंद्रिय अपर्याप्त प्रथम गुणहानि द्रव्य × ३ = सू. एके. अपर्याप्त के संक्लेश विशुद्धि स्थान १२८०० × ३ = ३,८४,०० " " " वि.

बा. एकेंद्रिय अपर्याप्त प्रथम गुणहानि द्रव्य × (नाना गुणहानि प्रमाण २ अंकों का परस्पर गुणकार - १) =
१०० × $2^{16} - 1$ = १०० × ६५५३५ = ६५५३५०० बादर एकेन्द्रिय अपर्याप्त के संक्लेश विशुद्धि स्थान
नाना गुणहानि १६, १६ बार २ का गुणकार करनेपर ६५५३६ उसमें एक कम ६५५३५

DATE

बा.एके.अपर्याप्तक के संक्लेश विशुद्धि स्थान ÷ सू. एके.अप.के संक्लेशविशुद्धि स्थान = पल्योपम / असंख्यात गुणकार का प्रमाण

~~९७० २५५/३२८ = ९७०५५/१२२~~

६५५३५०० ÷ ३२८०० = १७ ~~२५५५०/६५५३५००~~ = १७ १/२५६ गुणकार का प्रमाण

कुछ कम बा.एके.अप. उपरिम गुण. अन्योन्या × सूक्ष्म एकेन्द्रिय.अप.अन्योन्याभ्यस्तराशि / सूक्ष्म एकेन्द्रिय अप. अन्योन्याभ्यस्तराशि − १ = गुणकार का प्रमाण

१२८ × ४ / ३ = ५१२ / ३ इसमें कुछ कम, कुछ कम का प्रमाण १/३८४ आगे देखना

सू.एके.अप. संक्लेशविशुद्धिस्थान × उपर्युक्त गुणकार = बा.एके.अप.संक्लेशविशुद्धि स्थान

३२८०० × १७ १/२५६ = ३२८००० × ४३७०/२५६ =

अथवा

सू.एके. अपर्याप्तक जघन्य स्थितिबन्धस्थान समान स्थान से लेकर बा.एके. अपर्याप्तक के ऊपर के स्थितिबंध स्थान / सूक्ष्म एकेन्द्रिय अपर्याप्तक स्थितिबंधस्थान =

संख्यात खंड, बा.एके.अप. ऊपर के स्थितिबंधस्थान १०, सू.एके.अप.स्थितिबंधस्थान २ माने

१० ÷ २ = ५ संख्यात खंड हुए।

सूक्ष्म एकेन्द्रिय अपर्याप्तक के संक्लेशविशुद्धिस्थान × १ = प्रथम खंड के संक्लेशविशुद्धि स्थान
३२८०० × १ = ३२८००

सू.एके. अपर्याप्त संक्लेशविशुद्धि स्थान × सू.एके.अप.अन्योन्या = द्वितीय खंड ”
३२८०० × ४ = १५३६००

सू.एके.अपर्याप्त संक्लेशविशुद्धि स्थान × सू.एके.अन्योन्या² = तृतीय खंड ”
” ” ” ” × सू.एके.अन्योन्या³ = चतुर्थ खंड के ”

३२८०० × १६ = ६१४४०० = तृतीय खंड के संक्लेशवि.

३२८०० × ६४ = २,४५७६०० = चतुर्थ खंड के संक्लेशवि.

सू.एके.अपर्याप्त संक्लेशविशुद्धि स्थान × सू.एके.अन्योन्या⁴ = पंचम खंड के ”
३२८०० × २५६ = ९८३०,४०० = ” ” ”

सू.एके अपर्याप्त के स्थितिबंधस्थान २ माने, बा.एके.अपर्याप्तक के सू.एके.अप.जघन्य के समान से लेकर उपर के स्थितिबंधस्थान १० माने.

सू.एके.अप. स्थितिबंध समान खंड किये १०/२ = ५ खंड हुए

सू.एके. अपर्याप्तक संक्लेशविशुद्धि स्थान

१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०
१२८००	२५६००	५१२००	१०२४००	२०४८००	४०९६००	८१९२००	१६३८४००	३२७६८००	६५५३६००
प्रथम खंड		द्वितीय खंड		तृतीय खंड		चतुर्थ खंड		पंचम खंड	

सूक्ष्म एके. अपर्याप्तक के जघन्य स्थितिबंध स्थान से नीचे के बादर एके. अपर्याप्तक के संक्लेश विशुद्धि स्थानों का गुणकार एक अंक का असंख्यातवाँ भाग होता है क्योंकि वे सूक्ष्म एके. अपर्याप्तक के संक्लेश विशुद्धि स्थानों के असंख्यातवें भागप्रमाण हैं।

अंकसंदृष्टि से नीचे के बादर एके अपर्याप्तक के संक्लेश विशुद्धि स्थान =

(६४००×२) − १०० = १२८०० − १०० = १२७०० बादर एके. अपर्याप्तक

सू. एके. अपर्याप्तक के संक्लेशविशुद्धि स्थान ३२४०० अर्थात् तिगुणे से अधिक वास्तविक असंख्यातगुणे हैं।

सूक्ष्म, एके अपर्याप्तक संक्लेश वि. स्थान × सब गुणकार शलाकाओं का जोड → बा. एके. अपर्या. संक्लेश विशुद्धि स्थान

३२४००×(१+४+१६+६४ +२५६ + १/३) =

५.२२० अब संदृष्टि का आश्रय करके गुणकारों के मिलाने का विधान →

सू. एके. अपर्याप्तक की नानागुणहानि शलाका २, २/१ × २/१ = ४ अन्योन्याभ्यस्त राशि

४ − १ = ३

अब सूक्ष्म की अपेक्षा बादर जीव की आगे की नाना गुणहानिशलाका (१० से १६) ७ का विरलन कर दूना करके २/१ × २/१ × २/१ × २/१ × २/१ × २/१ × २/१ = १२८

बा. एके. उपरिम अन्योन्या / सू. एके. अन्योन्या − १ = १२८/३ इसमें बा. एके. अपर्याप्त की ऊपर की अन्योन्याभ्यस्त राशि मिलाने पर

१२८ + १२८/३ = (१२८×३)/३ + १२८/३ = (३८४+१२८)/३ = ५१२/३

सूक्ष्म एके. अपर्याप्त संक्लेशविशुद्धि स्थान × उपर्युक्त गुणकार = बादर अपर्याप्त स्थान + प्रथम गुणहानि द्रव्य

३२४०० × ५१२/३ = ६५५३६००

बा. एके. अपर्याप्त अध्यवसान स्थान + प्रथम गुणहानि द्रव्य

६५५३५०० + १०० = ६५५३६००

ये इतने १०० मात्र से हीन अभीष्ट हैं

प्रमाण	फल	इच्छा
६५५३६०० राशि की	५१२/३ गुणकार राशि है तो	१०० की कितनी?

फल×इच्छा / प्रमाण = (५१२×१००) / (३×६५५३६००) = ५१२ / १,९६,६०८ = ३

पूर्वोक्त गुणकार शलाका − १०० की गुणकार शलाका = बा. एके. अपर्याप्त की गुणकार शलाका

५१२/३ − १/३८४ = (५१२×१२८)/(३×१२८) − १/३८४ = (६५५३६ − १)/३८४ = ६५५३५/३८४ पल्योपम/असंख्यात

DATE

सूक्ष्म एके. अपर्याप्त अध्यवसानस्थान × पल्योपम/असंख्यात = बा. एके. अपर्याप्त अध्यवसानस्थान

३८४०० × ६५५३५/३८४ = ६५५३५०० " " " "

पृ. २२७-२२८

जीवसमास	संक्लेशविशुद्धिस्थान	गुणाकार का प्रमाण
सूक्ष्म एकेन्द्रिय अपर्याप्तक	सबसे कम ≡ ०	
बादर " "	असंख्यात गुणे	पल्योपम ÷ असंख्यात
सूक्ष्म एकेन्द्रिय पर्याप्तक	" "	" "
बादर " "	" "	" "
द्वीन्द्रिय अपर्याप्तक	" "	" "
द्वीन्द्रिय पर्याप्तक	" "	" "
त्रीन्द्रिय अपर्याप्तक	" "	" "
त्रीन्द्रिय पर्याप्तक	" "	" "
चतुरिन्द्रिय अपर्याप्तक	" "	" "
चतुरिन्द्रिय पर्याप्तक	" "	" "
असंज्ञी पंचे. अपर्याप्तक	" "	" "
असंज्ञी पंचे. पर्याप्तक	" "	" "
संज्ञी पंचे. अपर्याप्तक	" "	" "
संज्ञी पंचे. पर्याप्तक	" "	" "

पृ. २२५-२२८

एकेन्द्रियादिक के उत्कृष्ट स्थितिबंध का प्रमाण

	एकेन्द्रिय	द्वीन्द्रिय	त्रीन्द्रिय	चतुरिन्द्रिय	असंज्ञी पंचेन्द्रिय
मोहनीय	१ सा.	२५ सा	५० सा	१०० सा	१००० सा
ज्ञाना. दर्शना. अंतराय, वेदनीय	१ सा.×३/७	२५ सा×३/७ = १० ५/७ सागर	५० सा×३/७ = २१ ३/७ सागर	१०० सा×३/७ = ४२ ६/७ सागर	१००० सा×३/७ = ४२८ ४/७ सागर
नाम, गोत्र	१ सा×२/७	२५ सा×२/७ = ७ १/७ सागर	५० सा×२/७ = १४ २/७ सागर	१०० सा×२/७ = २८ ४/७ सागर	१००० सा×२/७ = २८५ ५/७ सागर

एकेन्द्रिय के सब कर्मों के जघन्य स्थितिबंध = उत्कृष्ट स्थितिबंध − पल्योपम का असंख्यातवाँ भाग

द्वीन्द्रिय से असंज्ञी पंचे. के " " = उत्कृष्ट स्थितिबंध − पल्योपम का संख्यातवाँ भाग

classmate

पृ.२५८

नाना प्रदेश गुणहानि स्थानान्तर स्तोक हैं।
एक प्रदेश गुणहानि स्थानान्तर असंख्यातगुणा है।
प्रथम स्थिति के प्रदेशपिण्ड का भागहार → डेढ़ गुणहानि
सर्व द्रव्य ÷ डेढ़ गुणहानि = प्रथम स्थिति का प्रदेशपिण्ड
इसका कारण →
द्वितीयादिक गुणहानियों के प्रथमादि निषेकों को परस्पर मिलाने पर अन्तिम गुणहानि के द्रव्य से रहित प्रथम गुणहानि का द्रव्य होता है।

	प्र.नि	द्वि.नि	तृ.नि	च.नि	पं.नि	ष.नि	सा.नि	आ.नि
द्वितीय गुणहानि	१२८	१२०	११२	१०४	९६	८८	८०	७२
तृतीय गुणहानि	६४	६०	५६	५२	४८	४४	४०	३६
चतुर्थ गुणहानि	३२	३०	२८	२६	२४	२२	२०	१८
पंचम गुणहानि	१६	१५	१४	१३	१२	११	१०	९
जोड	२४०	२२५	२१०	१९५	१८०	१६५	१५०	१३५
अंतिम गुणहानि	१६	१५	१४	१३	१२	११	१०	९
प्रथम गुणहानि	२५६	२४०	२२४	२०८	१९२	१७६	१६०	१४४

पृ.२५९ द्वितीयादि गुणहानियों से बनी इस प्रथम गुणहानि के द्रव्य के दो खण्ड करके उनमें से एक खण्ड को अधः शिर करके द्वितीय खण्ड के पार्श्व में स्थापित करने पर इतना है।

१४४		१४४	५६	२००
१६०		१६०	४०	२००
१७६		१७६	२४	२००
१९२		१९२	८	२००
२००	८	२००		२००
२००	२४	२००		२००
२००	४०	२००		२००
२००	५६	२००		२००
				१६००

प्रथम निषेक का $\frac{3}{4}$ से कुछ अधिक है

$$\left(\frac{256\times 3}{4}\right)+8 = 200$$

इसमें से अधिक ८ के प्रमाण को कम कर देने पर अवशिष्ट प्रथम निषेक के शुद्ध तीन चतुर्थ भाग ही रहते हैं। २००-८=१९२

१९२	१९२	१९२	१९२	१९२	१९२	१९२	१९२	तीन चतुर्थ भाग
८	८	८	८	८	८	८	८	साधिक

प्रथम गुणहानि के द्रव्य का भी समकरण करने पर १६००÷८ = २००
वह प्रथम निषेक के साधिक तीन चतुर्थ भाग प्रमाण होता है।
फिर उनमें से एक चतुर्थ भाग को अलग कर देने पर दो चतुर्थ भागों का प्रमाण होता है।

तीन चतुर्भाग १९२ १९२ १९२ १९२ १९२ १९२ १९२ १९२
८ ८ ८ ८ ८ ८ ८ ८

दो चतुर्भाग १२८ १२८ १२८ १२८ १२८ १२८ १२८ १२८
एक चतुर्भाग ६४ ६४ ६४ ६४ ६४ ६४ ६४ ६४

अब इस चतुर्थ भाग को ग्रहण करके पूर्व के तीन चतुर्थ भागों में मिला देने पर गुणहानि के बराबर प्रथम निषेक होते हैं।

१९२ १९२ १९२ १९२ १९२ १९२ १९२
\+ ६४ ६४ ६४ ६४ ६४ ६४ ६४
२५६ २५६ २५६ २५६ २५६ २५६ २५६

दो चतुर्भाग गुणहानि के बराबर है उनको प्रथम निषेक के प्रमाण से करने पर गुणहानि के अर्धभाग प्रमाण प्रथम निषेक होते हैं।
१२८×८ = १०२४, २५६×४ = १०२४

१२८ १२८ १२८ १२८
१२८ १२८ १२८ १२८
२५६ २५६ २५६ २५६

पृ. २६० दो-दो दो चतुर्भाग मिलाने पर एक प्रथम निषेक होता है
गुणहानि के अर्धभाग प्रमाण इन निषेकों को ग्रहण करके गुणहानि के बराबर प्रथम निषेकों में मिला देने पर डेढ़ गुणहानि प्रमाण प्रथम निषेक होते हैं
२५६×८ + २५६×४ = २५६×१२
अवशिष्ट अधिक द्रव्य ८×८ = ६४ + ८×८ = ६४ = १२८
२
इसको गौण करके प्रथम निषेक से डेढ़ गुणहानि को गुणित करने पर सब द्रव्य इतना होता है २५६×१२ = ३०७२ (सर्वद्रव्य), सर्वद्रव्य÷डेढ़ गुणहानि = प्रथम निषेक
३०७२÷१२ = २५६ प्रथम निषेक

द्वितीय निषेक का भागहार = साधिक डेढ़ गुणहानि
उपरिम विरलनराशि → डेढ़ गुणहानि १२
देयराशि → सर्वद्रव्य ३०७२ लब्ध → प्रथम निषेक २५६
२५६ २५६ २५६ २५६ २५६
१ १ १ १ १ - - - - - १२ बार
अधस्तन विरलन → निषेकभागहार → दोगुणहानि १६
देयराशि → प्रथमनिषेक २५६, लब्ध → गोपुच्छविशेष (चय) १६

DATE

$\frac{9६}{9}$ $\frac{9६}{9}$ $\frac{9६}{9}$ $\frac{9६}{9}$ $\frac{9६}{9}$ $\frac{9६}{9}$ - — -.. 9६ बार

उपरिम विरलन पर प्राप्त राशिमें से इतना प्रमाण (9६) अलग करनेपर डेढ़ गुणहानि प्रमाण (92 बार) गोपुच्छविशेष प्राप्त होते है $9६ \times 92 = 9९2$
शेष द्रव्य भी डेढ़ गुणहानि मात्र द्वितीय निषेक के बराबर होता है $2४0 \times 92 = 2८८0$

अब अधिक गोपुच्छविशेषों को द्वितीय निषेक के प्रमाण से करते हैं →

प्रमाण राशी	फल	इच्छा
निषेकभागहार-9 चयों का	9 द्वितीय निषेक	डेढ़ गुणहानि चयों को कितना द्वि. नि.
9६-9 = 9५ ,,	9 ,, ,,	92 ?

$\frac{\text{फल} \times \text{इच्छा}}{\text{प्रमाण}}$ $\frac{92}{9५} = \frac{४}{५}$ भागहार में प्रक्षेप अंक

पूर्वोक्त प्रथम निषेक का भागहार + प्रक्षेप अंक = द्वितीय निषेक भागहार

$92 + \frac{४}{५} = \frac{92\times५+४}{५} = \frac{६४}{५}$,, ,, ,,

सर्वद्रव्य ÷ उपर्युक्त भागहार = द्वितीय निषेक

$30७2 \div \frac{६४}{५} = \frac{30७2\times५}{६४} = 2४0$ द्वितीय निषेक

तृतीय निषेक का भागहार →
उपरिमविरलन में स्थित राशि में से दो चय प्रमाण द्रव्य अलग करनेपर तृतीय निषेक होता है $9६\times9४ = 22४$ तृतीय निषेक, अलग की राशी 32×92 अर्थात् 9६×2४ = तीन गुणहानि प्रमाण चय
इसके द्वारा तृतीय निषेक करते हैं →

प्रमाण राशी	फलराशि	इच्छाराशि
निषेकभागहार-2 चयों में	9 तृतीय निषेक	3 गुणहानिप्रमाण चयों में कितने?
9६-2 = 9४	9	3×८ = 2४ ?

$\frac{2४}{9४} = 9\frac{90}{9४} = 9\frac{५}{७}$ प्रक्षेप अंक

प्रथम निषेक भागहार + प्रक्षेप अंक = तृतीय निषेक भागहार

$92 + \frac{2४}{9४} = 92 + \frac{92}{७} = \frac{92\times७+92}{७} = \frac{९६}{७}$ तृतीय नि. भागहार

सर्वद्रव्य ÷ भागहार = तृतीय निषेक

$30७2 \div \frac{९६}{७} = \frac{30७2\times७}{९६} = 22४$ तृतीय निषेक

इस प्रकार प्रथम गुणहानि का अर्धभाग समाप्त होने तक ले जाना चाहिए।

प्र.२६२ अर्ध गुणहानि के अग्रिम निषेक का भागहार = 2 गुणहानि

डेढ़ गुणहानि मात्र आयाम, प्रथम निषेक प्रमाण विस्तार लिये हुए क्षेत्र की चार फालियाँ करके चौथी फालि को अलग कर गुणहानि के अर्धप्रमाण तीन खण्ड करके तीन फालियों के पार्श्वभाग में स्थापित करने पर अर्ध गुणहानि के अग्रिम निषेक विस्तृत दो गुणहानिप्रमाण आयत क्षेत्र होता है।
इसलिए अर्ध गुणहानि के अग्रिम निषेक का भागहार 2 गुणहानि होता है।

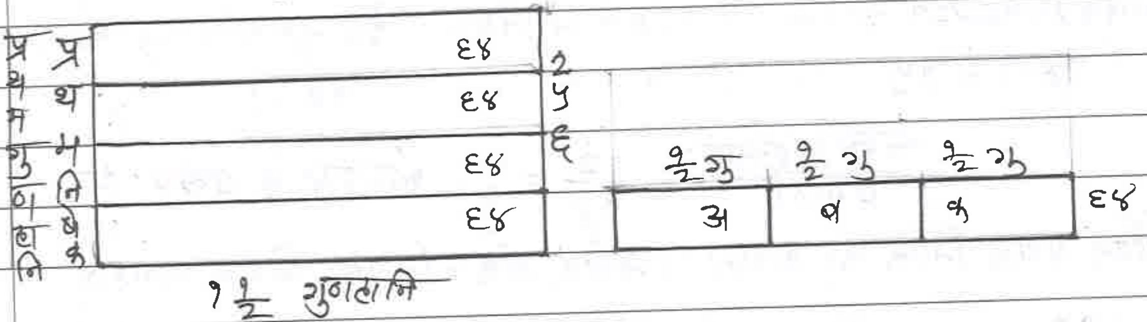

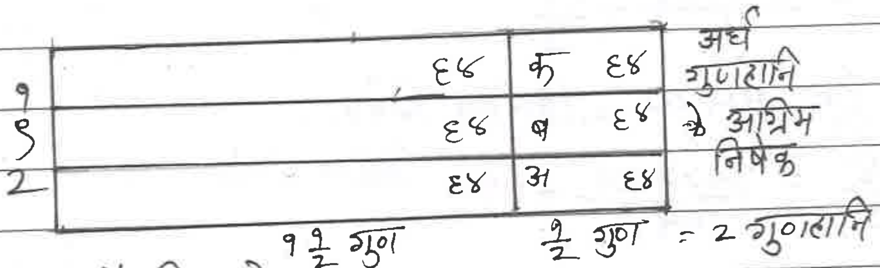

अथवा त्रैराशिक से

प्रमाणराशि	फल	इच्छा
निषेकभागहार×3 / ४ चयों में	1 निषेक	निषेक भागहार / ४ × डेढ़ गुणहानि चयों
१६×3 / ४ = १२ चयों में	1	४×१२ = ४८ में ?

४८ ÷ १२ = ४ प्रक्षेप अंक गुणहानि का अर्धभाग

प्रथम निषेक भागहार + प्रक्षेप अंक = विवक्षित भागहार
डेढ़ गुणहानि १२ + अर्ध गुणहानि ४ = दो गुणहानि १६ विवक्षित भागहार
सर्वद्रव्य ÷ दो गुणहानि = अर्ध गुणहानि से अग्रिम निषेक
3072 ÷ १६ = १९२ ,, ,, से ,, ,,

द्वितीय गुणहानि सम्बन्धी प्रथम निषेक का भागहार = 3 गुणहानि
प्रथम गुणहानि प्रथम निषेक से विस्तृत, डेढ़ गुणहानिप्रमाण विस्तृत क्षेत्र को बीच में से फाड़कर अर्ध भाग के ऊपर रखने पर तीन गुणहानियाँ होती हैं।

classmate

DATE

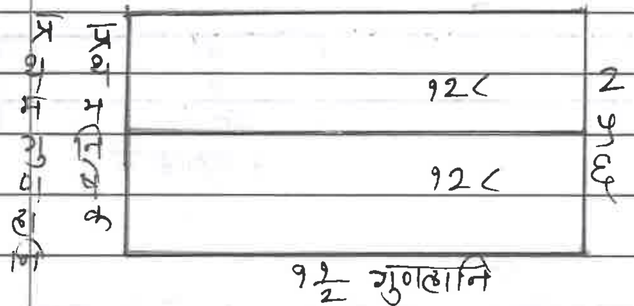

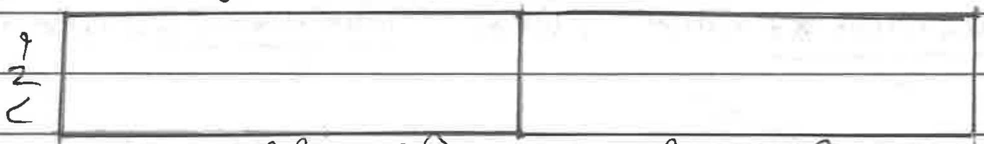

अथवा 1½ गुणहानि 1½ गुणहानि = 3 गुणहानि

एक गुणहानि चर्द है अतः एक रूप का विरलन कर द्विगुणित कर परस्पर में गुणित कर उत्पन्न राशि से डेढ़ गुणहानि को गुणित करनेपर

$\frac{2}{1} = 2$ $2 \times 12 = 24$ तीन गुणहानियाँ 8×3 होती हैं।

सर्वद्रव्य ÷ तीन गुणहानि = द्वितीय गुणहानि प्रथम निषेक

$3072 \div 24 = 128$ " " " "

द्वितीय गुणहानि के द्वितीय निषेक का भागहार → साधिक तीन गुणहानि

प्रमाण	फल	इच्छा
निषेकभागहार-1 चयों का	1 निषेक	तीन गुणहानि मात्र चयों में ?
16-1=15	1	24 ?

$24 \div 15 = 8/5$ प्रक्षेप अंक

द्वि·गु प्रथम निषेक भागहार + प्रक्षेप अंक = द्वि·गु द्वितीय निषेक भागहार

$24 + \frac{8}{5} = \frac{24 \times 5 + 8}{5} = \frac{128}{5}$ " " "

सर्वद्रव्य ÷ उपर्युक्त भागहार = द्वि·गु·द्वितीय निषेक

$3072 \div \frac{128}{5} = \frac{3072 \times 5}{128} = 120$ " "

गुणहानि का अर्ध भाग समाप्त होने तक ले जाना चाहिए।

द्वितीय गुणहानि के अर्धभाग के आगे के निषेक का भागहार = 4 गुणहानि

तीन गुणहानि मात्र क्षेत्र को स्थापित कर चार फालियाँ करके उनमें से तीन फालियों से निषेक (वतों का) होता है। चतुर्थ फाली अलग कर उसके तीन भाग करके तीन फालियों के आगे स्थापित करना

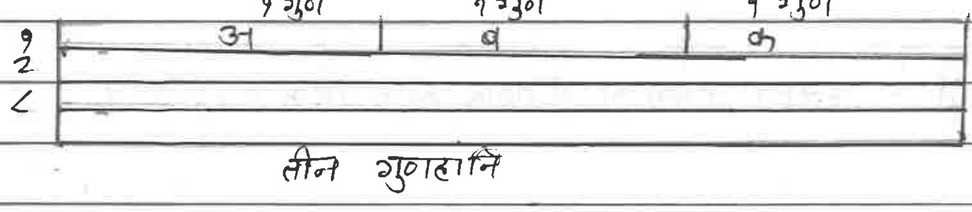

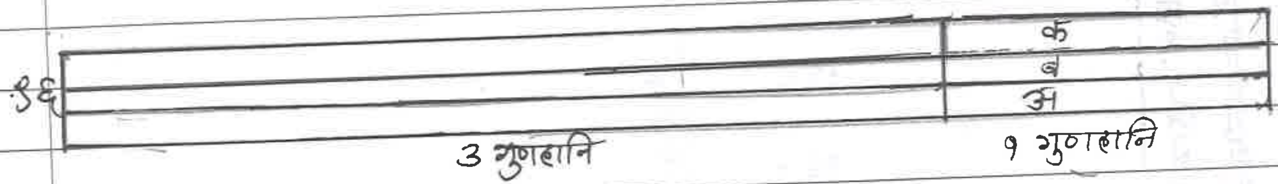

त्रैराशिक

	प्रमाण	फल	इच्छा
पृ. २६४	निषेक भागहार ४ x 3 चयों में	1 निषेक	निषेक भागहार ४ x 3 गुणहानि में कितने.
	12 चयों में	1	४ x २४ = ९६ ?

९६ ÷ 12 = $\frac{1}{८}$ गुणहानि प्रक्षेप अंक

द्वि. गु. प्रथम निषेक भागहार + प्रक्षेप अंक = विवक्षित भागहार
3 गुणहानि + 1 गुणहानि = ४ गुणहानि
२४ + ८ = 32, ८ x ४ = 32 = ४ गुणहानि

सर्वद्रव्य ÷ विवक्षित भागहार = द्वि. गु. अर्धभाग के आगे का निषेक
३०७2 ÷ 32 = ९६ " " " "

तृतीय गुणहानि प्रथम निषेक का भागहार = ६ गुणहानि
तीन गुणहानि प्रमाण पूर्वोक्त क्षेत्र को बीच में से फाड़कर एक अर्ध भाग के ऊपर द्वितीय अर्ध भाग को स्थापित करनेपर छह गुणहानियाँ होती हैं।

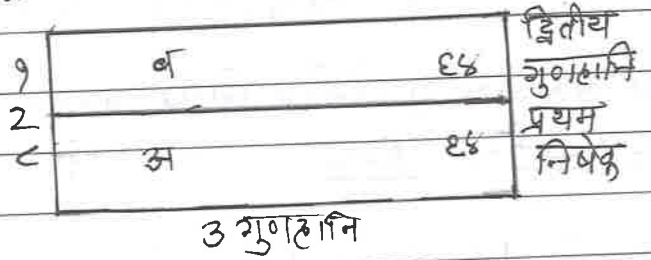

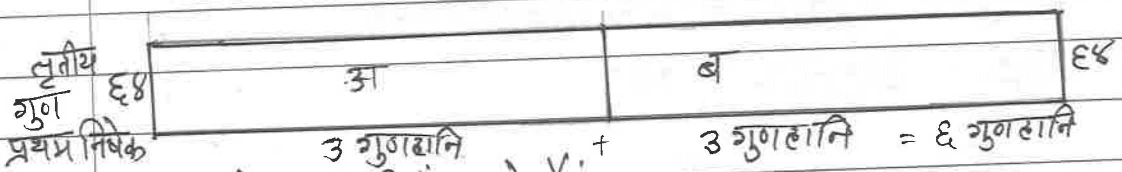

अथवा दो गुणहानियाँ घटे हैं
$\frac{2}{1} \times \frac{2}{1}$ = ४   डेढ़ गुणहानि x ४ = ६ गुणहानि
12 x ४ = ४८ = ८ x ६

सर्वद्रव्य ÷ ६ गुणहानि = तृतीय गुणहानि प्रथम निषेक
३०७2 ÷ ४८ = ६४ " " " "

तृतीय गुणहानि के द्वितीय निषेक का भागहार = साधिक ६ गुणहानि

classmate

DATE

प्रमाण	फल	इच्छा
निषेकभागहार - १ चयों का	१ प्रक्षेप	६ गुणहानि में कितना प्रक्षेप
१६ - १ = १५	१	६ × ८ = ४८

$\frac{४८}{१५}$ प्रक्षेप अंक

प्रथम निषेक भागहार + प्रक्षेप अंक = द्वितीय निषेक भागहार

६ गुणहानि ८×६ = ४८ + $\frac{४८}{१५}$ = $\frac{४८×१५+४८}{१५}$ = $\frac{७६८}{१५}$ = ५१$\frac{१}{५}$ द्वि.नि.भागहार

सर्वद्रव्य ÷ विवक्षित भागहार = द्वितीय निषेक

३०७२ ÷ $\frac{७६८}{१५}$ = $\frac{३०७२×१५}{७६८}$ = ६० द्वितीय निषेक

इस प्रकार जानकर अग्रस्थिति भागहार तक ले जाना चाहिए।

अग्रस्थिति भागहार = अंगुल ÷ असंख्यात। उसका प्रमाण $\frac{३०७२}{९}$

सर्वद्रव्य ÷ विवक्षित भागहार = अन्तिम निषेक

३०७२ ÷ $\frac{३०७२}{९}$ = $\frac{३०७२×९}{३०७२}$ = ९ अन्तिम निषेक

इस प्रकार भागहार प्ररूपणा समाप्त हुई।

अल्पबहुत्व →

द्रव्य का नाम	अल्पबहुत्व	प्रमाण	गुणकार का प्रमाण
अन्तिम स्थितिका प्रदेश पिण्ड	सबसे स्तोक	९	
प्रथम स्थिति का प्रदेश पिण्ड	असंख्यातगुणा	२५६	पल्योपम ÷ असंख्यात। कुछ कम अन्योन्या २५६ ÷ ९ = २८$\frac{४}{९}$
अजघन्य अनुत्कृष्ट द्रव्य	असंख्यातगुणा	२८०७	साधिक डेढ़ गुणहानि - १ २८०७÷२५६
प्रथम स्थिति से हीन सब द्रव्य	विशेष अधिक	२८१६	अन्तिम स्थिति के द्रव्य से अधिक
अनुत्कृष्ट द्रव्य	विशेष अधिक	३०६३	प्रथम निषेक - अन्तिम निषेक २५६ - ९ = २४७
सर्वद्रव्य	विशेष अधिक	३०७२	अन्तिम स्थिति के द्रव्य से अधिक

प्रथम निषेक × डेढ़ गुणहानि - १ = प्रथम निषेक रहित सब स्थितियों का द्रव्य

२५६ × (१२-१) = २५६×११ = २८१६ (३०७२ - २५६)

यह द्रव्य अन्तिम स्थिति के द्रव्य से रहित अभीष्ट है इसलिए एक का असंख्यातवाँ भाग गुणकार में से कम होगा ११ - $\frac{९}{२५६}$ = १० $\frac{२४७}{२५६}$ = $\frac{२८०७}{२५६}$ अजघन्य अनुत्कृष्ट द्रव्य का गुणकार

प्रथम निषेक × विवक्षित गुणकार = अजघन्य अनुत्कृष्ट द्रव्य

२५६ × $\frac{२८०७}{२५६}$ = २८०७ ,, ,, ,,